

जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2529

श्री सिद्धक्षेत्र कुंथलगिरि

श्री देशभूषण और श्री कुलभूषण मुनिराजों की
निर्वाणभूमि एवं चारित्र-चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर महाराज की तपोभूमि

फाल्गुन, वि.स. 2059

मार्च 2003

जिनभाषित

मासिक

मार्च 2003

वर्ष 2, अङ्क 2

सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन

कार्यालय

ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462016 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया
पं. रतनलाल बैनाड़ा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'

शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बेल्स लि.)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

द्रव्य-औदाय

श्री गणेश कुमार राणा
जयपुर

प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा 282002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-351428, 352278

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ आपके पत्र : धन्यवाद	1
◆ सम्पादकीय : चतुर्विध संघ की परिभाषा	2
◆ प्रवचन	
● निर्मल दृष्टि	: आचार्य श्री विद्यासागर जी 3
● प्रतिबद्धता	: मुनि श्री सुधासागर जी 5
◆ लेख	
● जल क्यों छानें ?	: मुनिश्री निर्णयसागर जी 12
● दिगम्बर-प्रतिमा की पहचान	: पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया 14
● समयसार-तात्पर्यवृत्ति : एक चिन्तन	: डॉ. श्रेयांस कुमार जैन 15
● मातृत्व की सच्ची संरक्षिका : अंजना	: डॉ. नीलम जैन 20
● पंचकल्याणक क्यों और कैसे ?	: डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन 23
● विवाह	: पं.सनतकुमार, वि.कु.जैन 25
◆ जिज्ञासा-समाधान	: पं. रतनलाल बैनाड़ा 28
◆ साहित्य समीक्षा	: डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती' 22
◆ कविता :	
● घड़ी	: डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती' 4
● संकल्पों की नाकाबंदी	: अशोक शर्मा 4
● मुनि श्री क्षमासागर जी की दो कविताएँ	आवरण पृष्ठ 3
◆ समाचार	13, 27, 31, 32

आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

जनवरी, 2003 जिनभाषित अंक का 'सम्पादकीय'। टिप्पणियाँ आपने अच्छी कीं। वास्तव में हम एक दूसरे के ऊपर कीचड़ उछालने का कार्य बहुत करने लगे हैं। आपने सम्पादकीय में यह टिप्पणी कर हम जैसे लोगों को, जिन्होंने पोस्टर रंगे नहीं देखे, उन्हें भी जिज्ञासा हो गई है कि वह ब्रह्मचारी कौन है? वह आचार्य कौन है? कैसे हैं पोस्टर? क्या हैं आक्षेप? आपने पैरा नं. 2 में परम पूज्य संत शिरोमणि आचार्यश्री के संघ का उदाहरण देकर यह कहने का प्रयास किया कि वे सभी संघ जिनमें मुनि-आर्यिका रहती हैं उनका आचरण संदिग्ध है? क्या राय देना चाहते हैं आप मुनि संघों को? आप हम चतुर्विध संघ की बात करते हैं तो क्या बिना आर्यिकाओं के चतुर्विध संघ की कल्पना भी हो सकती है? समाज में सौहार्द्रपूर्ण वातावरण बनाना है। यदि किसी सोने के आभूषण से कान कट जाए तो कान को काट कर फेंकना कैसे उचित है? संघ तो मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविकाओं का रहेगा। पैरा नं. 11 में आपका विश्वास बहुत संकुचित विचारधारा का प्रतीत होता है। कृपया लेखों में ध्यान हर विद्वान को रखना उचित होगा कि उसकी भाषा से किसी भी संघ के प्रति समाज के आदर में कमी न आ जाए। क्षमायाचना के साथ, सधन्यवाद।

धनकुमार जैन,

1 झ- 28, दादावाडी कोटा-9 (राजस्थान)

दिसंबर 2002 का अंक पढ़ा। अंतिम पृष्ठ को जिस तरह

आपने सँवारा है वह वास्तव में अनुकरणीय है। आप सदैव इसी तरह के छायाचित्र प्रस्तुत किया करें। इस पत्रिका के लेख संकलन के योग्य हैं और समय-समय पर हमारे काम में भी आते हैं। जो पंडित लोग केवल शास्त्रों की भाषा में बात करते हैं, उन्हें आसानी से इस पत्रिका के माध्यम से समझा भी देते हैं।

विज्ञापन का प्रभाव पत्रिका पर नहीं है, इससे ज्यादा खुशी की बात क्या होगी। बैनाड़ा जी का शंका-समाधान भी काफी चुनौतियों से भरा है इसके लिए उन्हें धन्यवाद ज्ञापित करें।

अजय जैन, चौक बाजार, भोपाल

मन्दिरजी में दिसम्बर का अंक 'जिनभाषित' प्राप्त हुआ। मन प्रसन्न हुआ। देखा कि इसमें पाँच आलेख विभिन्न ग्रन्थों आदि से साभार प्रकाशित किये गये हैं। ऐसा लगा कि इस अंक को 'साभार-विशेषांक' कहा जाना चाहिए। यदि एक-दो आलेख, वो भी जरूरी हों एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हों, तो बात समझ में भी आती है, परन्तु अधिकांश लेख साभार प्रकाशित होने से ऐसा लग रहा था कि जैसे विचार शून्यता हो गई हो या फिर कोई विषय नहीं प्राप्त हो रहा हो। अतः आप इस विषय पर अवश्य विचार करेंगे, ऐसी आशा है। धन्यवाद

एक स्वाध्यायी

टिप्पणी- जिनागम-सम्मत, सार्थक, सुप्रस्तुत, सुभाषामय, सुलिखित, एवं संक्षिप्त नये विचार सानुरोध आमंत्रित हैं।

सम्पादक

'जिनभाषित' के सम्बन्ध में तथ्यविषयक घोषणा

प्रकाशन स्थान	:	1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.)
प्रकाशन अवधि	:	मासिक
मुद्रक-प्रकाशक	:	रतनलाल बैनाड़ा
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.)
सम्पादक	:	प्रो. रतनचन्द्र जैन
पता	:	ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा, भोपाल- 462016 (म.प्र.)
स्वामित्व	:	सर्वोदय जैन विद्यापीठ, 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा- 282002 (उ.प्र.)

मैं, रतनलाल बैनाड़ा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

रतनलाल बैनाड़ा, प्रकाशक

चतुर्विध संघ की परिभाषा

एक मित्र ने मेरे जनवरी 2003 के सम्पादकीय पर कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं। लिखा है कि मैंने यह कहने का प्रयास किया है कि जिन संघों में मुनि और आर्यिका रहती हैं, उन सब का आचरण संदिग्ध है। उन्होंने प्रश्न किया है कि क्या बिना आर्यिकाओं के चतुर्विध संघ की कल्पना की जा सकती है? (देखिए-आपके पत्र)

मेरा नम्र निवेदन है कि मैंने वैसा कहने का प्रयास कतई नहीं किया, जैसा उन्होंने मुझ पर आरोप लगाया है। मैंने यह कहा है कि मुनि संघों में आर्यिकाओं और ब्रह्मचारिणियों के सदा साथ रहने से अपवादकारी घटनाएँ घट सकती हैं, जैसी कि कुछ वर्ष पूर्व सुनी जा चुकी हैं। एक घटना के समाचार का प्रसारण तो दूरदर्शन तक पर हो चुका है और उस पर समाज के गण्यमान्य पुरुषों की जाँच कमेटी भी बैठ चुकी है। कामवासना मनुष्य की बहुत बड़ी कमजोरी है। ऋषि-मुनियों को इसे वश में रखना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन होता है। जरा भी चूके और पाँव कटा। इसीलिए उन्हें ब्रह्मचर्यव्रत की रक्षा के लिए अपने चारों ओर कटीले तारों की बाड़ लगानी पड़ती है। मानवस्वभाव के मर्मज्ञ ज्ञानी पुरुष अनादिकाल से कहते आ रहे हैं-

घृतकुम्भसमा नारी तप्ताङ्गारसमा पुमान्।

तस्माद्धृतं च वह्निं च नैकत्र संस्थापयेत्॥

अर्थात् स्त्री घी के घड़े के समान है और पुरुष तपे हुए अंगार के समान। इसलिए घी और अग्नि को पास-पास नहीं रखना चाहिए। यद्यपि अपवादकारी घटना विरले ही संघ में विरली ही होती है, तथापि एक मछली सारे तालाब को गन्दा कर देती है। किसी एक संघ में अपवादकारी घटना घटती है, किन्तु सभी संघों को लोग सन्देह की दृष्टि से देखने लगते हैं, जो जिनशासन की सेहत के लिए ठीक नहीं है। आज तो कटीले तारों की बाड़ लगाना और भी अधिक आवश्यक हो गया है, क्योंकि युवा मुनियों, आर्यिकाओं और ब्रह्मचारिणियों की संख्या बढ़ रही है। हो सकता है, उनमें से कतिपय तात्कालिक भावावेश-वश अथवा ख्यातिपूजालाभ से प्रेरित होकर इस मार्ग पर आ रहे हों। ऐसे लोग नकली सिक्के साबित हो सकते हैं और संघ तथा जिनशासन को लाँछित करने का कारण बन सकते हैं। इसलिए आर्यिका संघ और मुनिसंघ का पृथक्-पृथक् रहना ही उचित है।

आर्यिकाओं के बिना चतुर्विध संघ की कल्पना नहीं की जा सकती, यह कथन एकान्ततः सत्य नहीं है। आचार्यों ने चतुर्विध संघ या चातुर्वर्ण संघ की व्याख्या दो प्रकार से की है-

“चातुर्वर्णस्य श्रमणसंघस्य। अत्र श्रमणशब्देन श्रमणशब्दवाच्या ऋषिमुनियत्यनगारा ग्राह्याः। ...अथवा श्रमणधर्मानुकूल-श्रावकादिचातुर्वर्णसङ्घः।” (प्रवचनसार, ता.वृ. गाथा २४९)

अर्थात् ऋषि, मुनि, यति और अनगार, इन चार का समूह चातुर्वर्ण श्रमणसंघ कहलाता है। अथवा श्रमणधर्म के अनुकूल चलनेवाले श्रावक, श्राविका, मुनि और आर्यिका को चातुर्वर्ण संघ कहते हैं।

इस आर्षवचन के अनुसार तो आर्यिका और श्रावक-श्राविका इन तीन के बिना भी केवल ऋषि, मुनि, यति और अनगार इन चार से ‘चतुर्विधसंघ’ संज्ञा सार्थक होती है। फिर भी मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका के समूह को भी ‘चतुर्विध संघ’ नाम दिया गया है। किन्तु उपर्युक्त व्याख्या से स्पष्ट है कि इन चारों के एक साथ रहने को चतुर्विध संघ नहीं कहते, अपितु ये चारों अलग-अलग रहें तो भी इन चारों की सामूहिकरूप से ‘चतुर्विध संघ’ संज्ञा होती है।

अर्थात् चतुर्विध संघ श्रमणधर्म के अनुकूल चलने वाले (जिनधर्मानुयायी) समाज की चार श्रेणियों का वाचक है। अतः आर्यिकाएँ किसी मुनिसंघ के साथ न रहें, तो भी वे चतुर्विध संघ के अन्तर्गत मानी जायेंगी, जैसे श्रावक-श्राविकाएँ मुनि संघ के साथ न रहने पर भी चतुर्विध संघ के अन्तर्गत मानी जाती हैं।

यदि कहा जाय कि चतुर्विध संघ सदा अपने आचार्य के साथ न रहे तो उनका संघ चतुर्विधसंघ कैसे कहलायेगा? इसका उत्तर यह है कि जैसे श्रावक-श्राविकाओं के सर्वदा साथ न रहने पर भी आचार्य का संघ चतुर्विध संघ कहलाता है, वैसे ही मुनियों और आर्यिकाओं के भी सदा साथ न रहने पर उनका संघ चतुर्विध संघ कहलायेगा, यदि वे उनसे दीक्षित हैं और उनके अनुशासन में रहते हैं तो। परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के संघ की आर्यिका माताएँ सदा उनके साथ नहीं रहती, फिर भी वे उनके अनुशासन में चलती हैं, इसलिए आचार्यश्री का संघ चतुर्विध संघ है। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। इसलिए चतुर्विध संघ की द्वितीय परिभाषा के अनुसार आर्यिकाओं के बिना चतुर्विध संघ की कल्पना अवश्य नहीं की जा सकती, किन्तु इसका तात्पर्य यह तो नहीं है कि चतुर्विध संघ आचार्य के साथ या अन्य मुनियों के साथ सदा रहेगी तभी संघ चतुर्विध संघ कहलायेगा। इसके बिना भी कहला सकता है। अतः आर्यिकाओं के बिना चतुर्विध संघ की कल्पना न कर पाने के तर्क से यह सिद्ध नहीं होता कि उनका आचार्य या अन्य मुनियों के साथ ही सदा रहना आवश्यक है। जैसी घटनाएँ पूर्व में सुनने को मिली हैं, उन्हें देखते हुए और मानवस्वभाव की कमजोरियों को ध्यान में रखते हुए जिनशासन को कर्त्तव्य होने से बचाने के लिए यही उचित है कि मुनिसंघ और आर्यिका संघ पृथक् पृथक् ही रहें। यदि कोई मुनिसंघ इस नियम का पालन कर रहा है, तो यह प्रशंसनीय और अनुकरणीय है। किमी की प्रशंसनीय प्रवृत्ति के उद्देश्य को अन्य के प्रति अनादरभाव की अभिव्यक्ति मान लेना ‘गुणिपु प्रमोद’ का लक्षण नहीं है।

रतनचन्द्र जैन

निर्मल दृष्टि

दर्शन विशुद्धि मात्र सम्यक् दर्शन नहीं है। दृष्टि में निर्मलता होना दर्शन विशुद्धि है और दृष्टि में निर्मलता आती है तत्त्वचिन्तन से

आचार्य श्री विद्यासागर जी

कार्य से कारण की महत्ता अधिक है क्योंकि यदि कारण न हो तो कार्य निष्पन्न नहीं होगा। फूल न हो तो फल की प्राप्ति नहीं होगी।

कुछ लोग ऐसे भगवान् की कल्पना करते हैं जो उनकी सब इच्छाओं की पूर्ति करे। 'खुदा महरबान तो गधा पहलवान' ऐसा लोग कहते हैं। इसीलिए महावीर को बहुत से लोग भगवान् मानने को तैयार नहीं। किन्तु सत्य/तथ्य ये हैं कि भगवान् बनने से पहले तो शुभाशुभ कार्य किए जा सकते हैं, भगवान् बनने के बाद नहीं।

भगवान् महावीर जब पूर्व जीवन में नंदराज चक्रवर्ती थे, तब उनको एक विकल्प हुआ कि "मैं सम्पूर्ण प्राणियों का कल्याण करूँ" और इसी विकल्प के फलस्वरूप उन्हें तीर्थंकर प्रकृति का बंध हुआ। कल्याण करने के लिए भी बंध स्वीकार करना पड़ा। ये बंधन चेष्टा पूर्वक किया जाता है तो बंध के पश्चात् मुक्ति होती है। यदि माँ केवल अपनी ही ओर देखे तो बच्चों का पालन सम्भव नहीं होगा।

'पर' के कल्याण में भी 'स्व' कल्याण निहित हैं ये बात दूसरी है कि फिर दूसरे का कल्याण हो अथवा न भी हो। किसान की भावना यही रहती है कि "वृष्टि समय पर हुआ करे" और वृष्टि तो जब भी होगी सभी के खेतों पर होगी किन्तु जब किसान फसल काटता है तो अपनी ही काटता है, किसी दूसरे की नहीं। अर्थात् कल्याण सबका चाहता है किन्तु पूर्ति अपने ही स्वार्थ की करता है।

दर्शन-विशुद्धि मात्र सम्यग्दर्शन नहीं है। दृष्टि में निर्मलता का होना दर्शन-विशुद्धि है और दृष्टि में निर्मलता आती है तत्त्वचिन्तन से।

हमारी दृष्टि बड़ी दोषपूर्ण है। हम देखते तो अनेक वस्तुएँ हैं किन्तु उन्हें हम साफ नहीं देख पाते। हमारी आँखों पर किसी न किसी रंग, शीला चश्मा लगा हुआ है। प्रकाश का रंग कैसा है, आप बतायें। भैया यह लाल है? क्या हरा या पीला है? नहीं प्रकाश का कोई वर्ण नहीं है। वह तो वर्णातीत है! किन्तु विभिन्न रंग वाले काँच के सम्पर्क से हम उस प्रकाश को लाल, पीला या हरा कहते हैं, इसी प्रकार हमारा स्वरूप क्या है? 'अवर्णोऽहं' मेरा कोई वर्ण नहीं, 'अरसोऽहं' मुझ में कोई रस नहीं, 'अस्पर्शोऽहं' मुझे छुआ नहीं जा सकता। यह मेरा स्वरूप है। किन्तु इस स्वयं को आप पहिचान नहीं पाते। यही है हमारी दृष्टि का दोष।

हम पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट की धारणा बनाते हैं। कुछ पदार्थों को इष्ट मानते हैं, जिन्हें हम हितकारी समझते हैं। कुछ पदार्थों को अनिष्ट मानते हैं, अहितकारी समझते हैं। पर वास्तव में कोई पदार्थ न इष्ट है और न अनिष्ट है। इष्ट-अनिष्ट की कल्पना भी हमारी दृष्टि का दोष है।

इसी प्रकार जैनाचार्यों ने बताया है कि आत्मा भिन्न है और शरीर भिन्न है। ऊपर का आचरण ये शरीर केवल एक छिलके के समान है यह उन्होंने अनुभव द्वारा बताया है किन्तु हम अनुभव की बात भी नहीं मानते। हमारी स्थिति बच्चे जैसी है। दीपक जलता है तो बच्चे को यह समझाया जाता है कि इसे छूना नहीं। उसे दीपक से बचाने की भी चेष्टा की जाती है किन्तु फिर भी वह बच्चा उस दीपक पर हाथ धर ही देता है और जब वह एक बार जल जाता है तो फिर वह उस दीपक के पास अपना हाथ नहीं ले जाता। हमारी दृष्टि का परिमार्जन तभी समझा जायेगा, जब हम प्रत्येक वस्तु को उसके असली रूप में देखें/समझें।

यह दर्शन विशुद्धि लाखों-करोड़ों में से एक को होती है, किन्तु होगी ये विशुद्धि केवल मन्दकषाय में ही। शास्त्रीय भाषा में दर्शन-विशुद्धि चौथे गुणस्थान में आठवें गुणस्थान के प्रथम भाग तक हो सकती है। सद्गृहस्थ की अवस्था से लेकर उत्कृष्ट मुनि की अवस्था तक यह विशुद्धि होती है। श्रेणी में तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध हो सकता है किन्तु होगा मंद कषाय के सद्भाव में। दूसरे के कल्याण की भावना का विकल्प जब होगा, तब बंध होगा। तीर्थंकर प्रकृति एक निकाचित बंध है जो मोक्ष ही ले जायेगा।

कल शास्त्रीजी मेरे पास आये थे। साथ में गोम्मटसार की कुछ प्रतियाँ लाये थे। उसमें एक बात बड़े मार्के की देखने को मिली। तीर्थंकर प्रकृति का उदय चौदहवें गुणस्थान में भी रहता है। जब जीव मोक्ष की ओर प्रयाण करता है तब यह तीर्थंकर प्रकृति अपनी विजयपताका फहराते हुए चलती है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कषायों से ही कर्मबन्ध होता है और कषायों से ही कर्मों का निर्मूलन होता है। जैसे पानी से ही कीचड़ बनता है पानी में ही घुलकर गंगा के जल का भाग बन जाता है। जिसे लोग सिर पर चढ़ाते हैं और उसका आचमन करते हैं। 'काँटा ही काँटे को निकालता है, यह सभी जानते हैं।

दर्शन-विशुद्धि भावना और दर्शन में एक मौलिक अन्तर है। दर्शन विशुद्धि में केवल तत्त्वचिन्तन ही होता है, विषयों का चिन्तन नहीं चलता किन्तु दर्शन में विषय चिन्तन भी संभव है।

दर्शन-विशुद्धि भावना चार स्थितियों में भायी जा सकती है। प्रथम मरण के समय, द्वितीय भगवान् के सम्मुख, तृतीय अप्रमत्त अवस्था में और चौथे कषाय के मन्दोदय में।

तीर्थंकर प्रकृति पुण्य का फल है "पुष्यफला अरहंता।", किन्तु इसके लिये पुण्य कार्य पहले होना चाहिए। प्रवृत्ति ही निवृत्ति की साधिका है। राग से ही वीतरागता की ओर प्रयाण होता है। एक सज्जन ने मुझ से कहा -महाराज, आप एक लंगोटी लगा लें तो अच्छा हो, क्योंकि आपके रूप को देखकर राग की उत्पत्ति होती है।" मैंने कहा-"भैया, तुम जो चमकीले-भड़कीले कपड़े पहनते हो, उससे राग बढ़ता है अथवा यथाजात अवस्था से। नग्न दिग्म्बर

रूप तो परम् वीतरागता का साधक है। विशुद्धि में आवरण कैसा? विशुद्धि में तो किसी प्रकार का बाहरी आवरण बाधक है साधक तो वह किसी अवस्था में हो नहीं सकता। अन्तरंग का दर्शन तो यथाजात रूप द्वारा ही हो सकता है, फिर भी यदि इस रूप को देख कर किसी को राग का प्रादुर्भाव हो, तो मैं क्या कर सकता हूँ। देखने वाला भले ही मेरे रूप को न देखना चाहे तो अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ले। पानी किसी को कीचड़ थोड़े ही बनाना चाहता है। जिसकी इच्छा कीचड़ बनने की हुई उसकी सहायता अवश्य कर

देता है। पानी एक ही है। जब वह मिट्टी में गिरता है तो उसे कीचड़ बना देता है। जब वह बालू में गिरता है तो उसे सुन्दर कणदा रेत में परिवर्तित कर देता है। वही पानी जब पत्थर पर गिरता है तो उसके रूपरंग को निखार देता है। पानी एक ही है, किन्तु जो जैसा बनना चाहता है उसकी वैसी ही सहायता कर देता है। इसी प्रकार नग्न रूप वीतरागता को पुष्ट करता है किन्तु यदि कोई उससे राग का पाठ ग्रहण करना चाहे, तो ग्रहण करे, इसमें उस नग्न रूप का क्या दोष? ये तो दृष्टि का खेल है।”

घड़ी

डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'

टिक-टिक करती घड़ी
समय की गतिशीलता का पक्का सबत है
जो बारह अंकों
और
घंटा, मिनट और सेकेण्ड की सुइयों से
सफर पूरा करती है दिन का
और कहती है
ये घड़ी वाले
तुम्हारी गति तो असीम है
फिर क्यों नहीं चलते
टकटकी लगाकर देखते हो
आगे बढ़ने वालों को
स्वयं क्यों नहीं बढ़ते?
क्या कहा-
समय आयोगा तो आगे बढ़ेंगे
लगता है आप
निर्जीव घड़ी से भी गए बीते हैं
समय की प्रतीक्षा ही करते हैं
समय से कहाँ जीते हैं?
घड़ी
टिक-टिक करती
आगे ही बढ़ती है
तुम्हारी तरह
टिक कर तो नहीं रहती है।

पता- एल-65, न्यू इन्दिरा नगर
ए, बुरहानपुर (म.प्र.)

संकल्पों की नाकाबंदी

अशोक शर्मा

जिनके कंठ सी दिये युग ने उनकी पीड़ा से घबराकर
मेरी इच्छा हर मौसम में चुप-चुप रहने की होती है।

मेरे प्रतिवादी होने से बहुमत हार नहीं जाता है
संकल्पों की नाकाबंदी मन स्वीकार नहीं पाता है।
दिनभर की खींचातानी में समझौतों की पहन बेड़ियाँ
सीमित आकाशों से कोई बिल्कुल पार नहीं जाता है ॥

अपने गलत सफर में मुझको रह-रह कर ऐसा लगता है
मेरी मंजिल भटकावों की बाहों में हरदम सोती है।

नए सिरे से जीवन जीना राही को मंजूर नहीं है
मंजिल खुद अपनी दूरी से बिल्कुल दूर नहीं है।
निपट अकेली इन साँसों को संभव हो कैसे बहलाना
कुंठाग्रस्त हृदय जब मेरा रती भर भी क्रूर नहीं है ॥

बूँद बूँद रिसती गागर की मरूथली में कब्र बनाती
अपना कर्ज चुकाती मेरी घायल उमर बहुत रोती है।

पीड़ा-आँसू भर आँखों में अन्तर्मन श्रृंगारूँ कैसे
कलियों की पलकें नम हैं अधर-अधर गुँजारूँ कैसे।
दिशा-दिशा पर जमा हुआ है अंतहीन औंधियारा मन का
ऐसे में मैं नीम धुंध का यह विस्तार सँवारूँ कैसे ॥

औंधियारे के श्याम पाश में कसे-कसे ऐसा लगता है
अपनी कोई एक विवशता अंतर में पीड़ा बोती है।

अभ्युदय निवास, 36-बी, मैत्री विहार, सुपेला
भिलाई-490 023
(दुर्ग) छ.ग.

मुनि धर्म निभाना बहुत कठिन है। सिर्फ इतना समझ लीजिये कि ये आग का दरिया है जिसे तैर कर पार करना है। जल की नदी में तैरना सरल है लेकिन अग्नि की नदी में तैरना मुश्किल है, अग्नि पर चला जा सकता है लेकिन तैरा नहीं जा सकता। चारों ओर अग्नि है, धुँआ उठ रहा है मुनिराज उस दरिया में तैरने का साहस कर रहे हैं, लेकिन कर्मों ने साथ नहीं दिया। आत्मा शरीर से अलग होने की स्थिति में आ गयी। शरीर और आत्मा दोनों मिलकर पार करते तो उसमें मार्ग और मंजिल की सुरक्षा हो जाती। मार्ग की सुरक्षा शरीर से होती है और मंजिल की रक्षा आत्मा से होती है। छःह महीने और आठ समय में 608 जीव सिद्धालय में सिद्ध दशा को प्राप्त होते ही हैं। लेकिन इस शरीर को सायास छोड़ेंगे तो मार्ग का लोप हो जायेगा, मार्ग डूब जाएगा। क्योंकि शरीर की वीतरागता से मार्ग की रक्षा होती है अर्थात् दूसरे लोग उसके माध्यम से शिक्षा लेकर मार्ग पर चलते रहेंगे मार्ग सुरक्षित रहेगा। आत्मा की वीतरागता से स्व का कल्याण होता है और शरीर की वीतरागता पर कल्याण से सहायक होती है।

उन चरम बलिदानी सात सौ मुनि महाराजों से नोकर्म ने कहा कि “आगे हम आपका साथ नहीं दे सकते हमारे लिए प्रतिकूलता आ गई है। आपके अंदर अनंत शक्ति है इसलिए आप समता परिणाम रखिये। आप अपने ज्ञान ध्याने में बँधे रहिये”। शरीर कहता है कि बस में गिरता हूँ अब मेरे सामर्थ्य के बार हो गया है। और एक-एक करके 700 मुनियों की काया भूलुंठित हो गयी। कौन मुनिराज को? वहाँ की जनता धर्मात्मा थी लेकिन खल की शक्ति ज्यादा होने से धर्मात्मा भी मन मार कर देखते रहे। मुनिराजों के जलते शरीर से अनेक विकृतियाँ प्रकट होने लगी थीं। शरीर अपना धर्म पूर्ण रूप से दिखा रहा था। 700 मुनिराज जिन श्रावकों की आँखों देखे मरण को प्राप्त हो रहे होंगे क्या उन सम्यग्दृष्टियों की कल्पना तुम कर सकते हो? आँख बन्द करके कल्पना करना कि आपके सामने मुनिराज रत्नत्रयधारी परमेष्ठी पद को धारण करने वाले आचार्य, उपाध्याय, साधु तीनों और एक दो तीन नहीं 700 मुनिराजों का तुम्हारी आँखों देखे उतसर्ग के कारण प्राणान्त हो जाये तब आपकी दशा क्या होगी? एक घटना मुझे याद आती है जब एक मुनि का प्राणान्त करने के लिए शेर आता है, सुअर जो एक सम्यग्दृष्टि था उसने देख लिया कि शेर मुनिराज को मारने आ रहा है अतः वह सम्यग्दृष्टि कहता है कि मेरे घट में जब तक प्राण है तुम मेरे आयतन से प्राण नहीं ले सकते, मेरे उपास्थ के प्राण नहीं ले सकते। हे सिंहराज! तू सिंहराज है मैं सूकर की पर्याय में हूँ, तेरी शक्ति का कोई पार नहीं है और मेरी तुच्छता का कोई पार नहीं है। मेरी काया भी ऐसी है कि जिसे कोई

छू लेतो स्नान करना पड़ता है, मेरा जीवन भी ऐसा है जिसे दुनिया दुर्गन्ध युक्त देखती है। ऐसा दुर्गन्ध करने वाला प्राणी हूँ। उसके बावजूद मेरी आत्मा में यह पहचान है कि ये आराध्य हैं, उपास्थ हैं। ये मोक्ष मार्ग पर चलने वाले हैं जिन्होंने सारी दुनिया का हित करने का विचार किया है। ऐसे आयतन पर तू पंजा उठाने का प्रयत्न कर सकता है। पंजे की बात छोड़ दे पंजे की तेरी एक उंगली भी नहीं उठ सकती जब तक मैं जीवित हूँ। कूद गया शेर के सामने। अब सोचिये कि शेर और सुअर की लड़ाई में कौन बचेगा और कौन मरेगा। यह तो स्वतः ही सिद्ध है कि सुअर ही मरेगा लेकिन सुअर कहता है कि भली-भाँति मैं जानता हूँ कि मेरा मरण होना निश्चित है, मैं तुमसे जीन नहीं सकता हूँ, मैं यह भी जानता हूँ कि मृगमें तेरा सामना करने की शक्ति नहीं है, फिर भी सिंहराज से कहता है कि पहले मेरे से निपट फिर बाद में मुनिराज पर झपट! दोनों में युद्ध चालू हो गया। सुअर ने अपनी पूरी ताकत लगा दी। जब कभी कमजोर व्यक्ति भी अपनी पूरी ताकत लगा देता है तो बलवान व्यक्ति भी हार जाता है। दोनों एक दूसरे से युद्ध करते हुए मरण को प्राप्त हुए। मुनिराज बच गये। इसी प्रकार वह गिद्धराज भी जानता था कि रावण के पास चन्द्रहास खडग है अतः मेरा बचना नामुमकितन है मैं मर जाऊँ चाहे मेरी शक्ति कम हो जाये लेकिन जब तक मेरी आँखों में ज्योति है तब तक मैं अत्याचार सहन नहीं कर सकता। मेरे रहते हुए एक सती का शील भंग व अपहरण नहीं कर सकता। यह कहते हुए वो रावण पर झपट पड़ा। उस सम्यग्दृष्टि का साहय तो देखो कि एक पक्षी होते हुए भी इतने बड़े शक्तिशाली, सम्पन्न राजा जो तीन खंड का अधिपति है उनका सामना करने का साहस कर बैठा। अर्थात् धर्मात्मा व्यक्ति यह नहीं देखता है कि मेरा शत्रु कितना कमजोर है या शक्तिशाली। वो तो यह सोचता है कि कोई भी मेरे होते हुए धर्म पर अँगुली नहीं उठा सकता है। मर गया बेचारा वह गिद्धराज लेकिन अपनी आँखों के सामने सीता का अपहरण नहीं होने दिया। बंद हो गई उसकी आँखें उसके बाद चाहे जो करते रहो।

उसी प्रकार सुअर सोचता है कि मेरे मरने से केवल इतनी ही हानि होगी कि गन्दगी का स्थान साफ नहीं हो सकता यदि मुनिराज जीवित रहे तो ना जाने कितनी आत्माओं को साफ करेंगे कितनी आत्माओं के कषाय और मिथ्यात्व रूप मल को साफ करेंगे, वह सोचता है कि मेरा मरना ही उचित है। मुनिराज का जीना श्रेयस्कर है। उक्त पवित्र परिणामों से मरने की वजह से वो सीधा 16वें स्वर्ग गया व सिंह अपवित्र परिणामों से छठवें नरक गया।

हिंसा दोनों ने की है दोनों ने एक दूसरे को मारा। लेकिन एक मुनिराज की रक्षा के लिए मरा और एक मुनिराज को मारने

के भावों को लेकर मरा। बस कोई विशेष फरक नहीं है। एक ने एक जीव को इसलिए मारा कि तू मेरे शिकार में बाधक है। और एक ने इसलिए मारा कि तू शिकार खेल रहा है मुनिराज के साथ। एक के प्राण मुनि रक्षा में गये और एक के प्राण भक्षण के परिणाम को लेकर गये। मुनि भक्षण का परिणाम किया 6वें नर्क गया, मुनि रक्षा का परिणाम 16वें स्वर्ग गया।

परिणामों की विचित्रता देखें बन्धुओ, जब भी तुम्हारी जीवन में मुनि रक्षा की बात आ जाये धर्म रक्षाकी बात आ जाये तो रक्षा बंधन ध्यान में कर लेना। अभी रक्षा बंधन किया गया, आपकी समाज के द्वारा किसी एक व्यक्ति को रक्षा सूत्र बाँधा गया। साहस किया उसने कि मैं अपने जीवन काल में जब तक घट में स्वास रहेगी तब तक कभी भी रत्नत्रयधारी मुनिराजों पर उपसर्ग नहीं आने दूँगा। प्राण निकल जाये लेकिन उसकी बात अटल है, ये संकल्प किया उसने, राखी तो राखी होती है, राखी के निमित्त से मैं संकल्प करता हूँ कि ये मेरी काया धर्म के प्रति समर्पित हो जाए, ऐसी भावना, भक्ति अह्लाद उसकी आत्मा के अंदर से उमड़ता है। रक्षा बंधन तो निमित्त है हर साल आता है बन्धुओ। लेकिन एक साल के लिए संकल्प हो गया कि जब मैं सुनूँ कि मुनि के ऊपर संकट आया है तो मैं सब कुछ छोड़कर अपने मुनि के पास चला जाऊँ। तो ऐसा नियम कम से कम एक आत्मा ने लिया और अनुमोदना तुम सब आत्माओं ने किया। हत तो यही मान रहे हैं कि तुम सबने अनुमोदना की। संकल्प इन्होंने लिया और अनुमोदना आप सब ने की- हम तुम्हारी साथ हैं। जब धर्म की रक्षा की बात आ जाए तो तुम आगे चलना मैं पीछे चलाऊँगा। अपना कार्य पूरा करूँगा। ऐसा था वह दिन लेकिन हस्तिनापुर के अंदर कोई श्रावक साहस नहीं कर पा रहा है, सब मन मानकर बैठे हैं और राजा पद्मराज राज्य देकर भोगों में लीन हो गया। उसको पता ही नहीं कि क्या हो गया सात दिन के राज्य देने में। भोगी विलासी व्यक्ति अगाड़ी और पिछाड़ी का विचार नहीं करता है और अपने कार्य में लग जाता है। उसका भविष्य क्या है यह नहीं जाना, जाकर अन्तःपुर में लीन हो गया। लेकिन धर्मात्माओं के ऊपर जब जब भी कोई उपसर्ग आये तब किसी ना किसी रूप में उसके संकेत जरूर सृष्टि में दृष्टिगोचर होने लग जाते हैं। धर्म रक्षा के लिए पहले नहीं अंत में आता है। परीक्षा पहले नहीं होती, परीक्षा साल के शुरुआत में नहीं होती जब अंतिम दिन आता है लास्ट (सूहाह) दिन आता है तब परीक्षा होती है। शुरु में परीक्षा नहीं होती है। जब उपसर्ग इतनी चरम सीमा पर पहुँच जाये कि बस अति होने वाली है तब धर्म कहता है सावधान! जिनते धर्मात्माओं के उपसर्ग टले हैं, वे अंतिम समय में टले हैं। सुदर्शन सेठ को सूली लगी किसी देवता ने आकर सहायता नहीं की तब देवता क्यों नहीं आये? जब वह रानी स्मशान में से उठा कर ले जा रही थी सुदर्शन को, उस समय देवता क्यों नहीं आये जब वह रात्रि में शील भंग कर रही थी? उस समय क्यों नहीं आये जब

सूली पर चढ़ाने के लिए सुदर्शन को ले जा रहे थे। धर्म कहता है अभी चरम सीमा नहीं आई है। उस समय देवता आ गये जिस समय तलवार से सिर अलग किया जाने वाला था। उस समय देवता कहते हैं खबरदार! कौन सत्य है और असत्य है इसका निर्णय हो जाता। इसी प्रकार दूसरा उदाहरण है कि जब द्रौपदी का दाब पर लगाया जा रहा था युधिष्ठिर के द्वारा, उसी समय किसी देवता को आकर हाथ पकड़ लेना चाहिए था कि खबरदार तुम भाइयों को तो दाँव पर लगा चुके अब तुम्हें पराई निधि को दाँव पर लगाने का कोई अधिकार नहीं है। उस समय नहीं आये देवता जिस समय केश पकड़ कर खींच रहा है दुःशासन। देवता कहते हैं कि अभी चरम सीमा नहीं आई है अभी देर है। आ गये उस समय जब नारी का अंतिम गुण शील के समाप्त होने की सीमा आ गई तो देवता आ गये। चमत्कार हो गया “खींचत खींचत चीर दुःशासन भुजबत हारो रे!”

क्यों नहीं आ गये देवता जब यज्ञ करे रहे थे चार मंत्री बलि, प्रह्लाद, बृहस्पति और नमोची। कोई देवता नहीं आये। वहाँ देवताओं ने कहा कि चलने दो अभी, अभी मुनिराज पढ़ाई में चल रहे हैं क्लास चल रही है परीक्षा तो अन्त समय में लूँगा। उस समय किसी देवता का आसन कम्पायमान नहीं हुआ। तब प्रकृति स्वयं कहती है कि क्या हो गया इस सृष्टि के मानवों को, दानवों को, देवताओं को एक का भी आसन नहीं हिल रहा है, एक भी सुध नहीं ले रहा है कि पृथ्वी पर मुनिराजों का क्या हो रहा है। जब देवता सो जाते हैं तो प्रकृति कहती है कि मैं जागती हूँ और प्रकृति ने अपना ऐसा प्रभाव दिखाया कि एक मुनिराज बाहर बैठे हुए थे अकस्मात् ध्यान से उठकर कर वे मुनिराज ने थोड़ा यूँ देखा और देखते ही निकल गया- हाय हाय! हाय अनर्थ हो गया! कभी कम्पायमान नहीं होने वाला भी यह श्रवण नक्षत्र, आज ऐसे काँप रहा है जैसे पौष की ठण्ड में बंदर काँपता है। कपि को सबसे ज्यादा ठण्ड लगती है (बंदर को)। कपि के समान काँप रहा है यह श्रवण नक्षत्र। जो काँप नहीं आज तक कभी काँप नहीं सकता है ऐसा ज्योतिष शास्त्रों में कहा गया है। नियम से कोई ना कोई अनर्थ घटने वाला है। आकाश में कुछ घटनाएँ ऐसी घट जाती हैं जिससे सृष्टि पर क्या होने वाला है इसका पता लगा सकते हैं। रात्रि में यदि इन्द्रधनुष दिख जाये तो शास्त्रों के अनुसार राजा का मरण निश्चित है। हम लोगों ने खुद देखा है जब भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी का मरण हुआ था उसके पहले दो-दिन तक निरन्तर आकाश में इन्द्रधनुष दिखता रहा है! हम सोचते थे कि ना जाने कौन सा अनर्थ होने वाला है। तीसरे दिन सुन लिया कि प्रधानमंत्री का मरण हो गया है। आगम के ऊपर श्रद्धान बढ़ गया कि जिनवाणी में जो लिखा है वो सत्य है। और भी कई घटनाएँ आकाश में घटती हैं जिनसे पता लगा लेते हैं लोग। उस दिन श्रुत सागर महाराज खुले आकाश में बैठे थे। वो देखकर कह रहे हैं अनर्थ हो गया किन्हीं धर्मात्माओं के ऊपर उपसर्ग आ गया।

तुरन्त आँख बंद करके अनुमान लगाते हैं कि श्रवण नक्षत्र काँप रहा है जो कभी कांपता नहीं था। श्रुतसागर महाराज को अवधि का ज्ञान था निमित्त ज्ञान था। निमित्त ज्ञान से जाना कि हमारी भारत भूमि पर अकम्पनाचार्य, जो अकम्प हैं कभी काँपने वाले नहीं हैं वो भी कम्पायमान हो रहे हैं उनके एवं संघ के घोर उपसर्ग हो रहा है। हाय-हाय क्या होगा! जैसे ही मुख से निकलता है उनके बाजू में क्षुल्लक पुष्पदंत जी महाराज बैठे थे वो कहते हैं मुनिराज जी क्या मामला है? जो आज तक नहीं सुना वो आज सुन रहा हूँ कि रात्रि में मुनियों के मुख से श्वास भी नहीं निकलती और तुम्हारे मुख से तो हाय-हाय निकल रहा है! नियम है कि जिस समय मुनि के मुख से हाय श्वास निकल जाये तो समझ लेना चाहिए कि कोई अनर्थ घटने वाला है।

साधु के आँसू, साधु का संक्लेश और साधु की हआय श्वास नियम से विनाशसूचक होती है ऐसा ज्योतिष शास्त्र में कहा गया है। यदि साधु कसी निमित्त से संक्लेशित हो जाए तो समझ लेना चाहिए कि अनिष्ट अवश्य सम्भावी है। क्षुल्लक जी घबरा गये कि किस का विनाश होने वाला है अब किसी के विनाश की स्थिति आ गई है? अनर्थ हो गया अनर्थ। आँखे डबडबा रही हैं। अनर्थ हो गया अनर्थ हो गया अनर्थ हो गया ऐसे अनर्थक शब्द मुख से निकल रहे हैं, क्षुल्लक जी घबरा गये। बताइये महाराज क्या हो गया तब उन्होंने कहा कि प्रभाल काल होते ही सब कुछ विनाश जो जाना है, चरम सीमा पर उपसर्ग पहुँच गया है अकप्राचार्य मुनि ने ऊपर उपसर्ग आ गया है। अकम्पनाचार्य का पूरा संघ संकट में आ गया है। क्षुल्लक जी कहते हैं कि उपाय बताइये, मैं क्या करूँ मुझसे जो कार्य बन सकता है वो मैं करने को तैयार हूँ। मैं जो रात्रि में भी चल सकता हूँ। मैं तो एक श्रावक की दशा में हूँ और श्रावक सब कुछ कर सकता है। धर्म की रक्षा करने के लिए श्रावक को हर चीज की छूट होती है। तब महाराज ने कहा कि विष्णु कुमार मुनिराज के पास जाओ, शीघ्रता करो, मुनिराज ध्यान में बैठे होंगे उनका ध्यान हटा देना। तुम जैसे ही उनका ध्यान तोड़ो वैसे ही मेरा नाम ले लेना। जो पाप लगेगा मुझे लगेगा। अगर मैं इनका ध्यान भंग कर दूँगा। तो मुझे कितना दोष लगेगा यदि इनको शुद्धोपयोग से हटाऊँगा और उनको अशुद्धोपयोग में लाऊँगा। शुद्ध उपयोग से गिराकर अशुद्ध उपयोग में लाने में कितना पाप लगेगा। मुनिराज कहते हैं कि उस समय तुम इस पाप से ना डरना। तुम इसे अपने मर्त्य मढ़ लेना, उनको ध्यान से डिगा देना फिर मेरा संदेश सुना देना। क्षुल्लक जी ने देर नहीं की और पलक झपकते ही आकाशय गामिनी विद्या के सहारे पहुँच गये और पर्वत पर जहाँ महाराज बैठे थे। ध्यान में बैठी सौम्य मुद्रा को देखकर नमस्कार किया, क्षुल्लक जी के मन में दया आई कि कैसे इस सौम्य मुद्रा को विकृत कर दूँ। ऐसी लग रही है यह वीतरागी मुद्रा मुझे जैसे अरहन्त भगवान् बैठे हों। कैसे मैं इनको ध्यान से हटा दूँ लेकिन उनको तुरन्त आदेश ध्यान में आया जिसने आदेश दिया है उसकी

आज्ञा का पालन करना है और उनको हिलाता है चरणों में लोटता है। मुनिराज ध्यान छोड़ दीजिए, मोक्ष छोड़ दीजिये। अभी आपकी संसार में आवश्यकता है। संसार से ऊपर उठने की आवश्यकता अभी आपको नहीं। अभी संसार में पहले आप सांर के कई जीवों को उठाइये। महाराज का ध्यान भंग हो गया। महाराज क्षुल्लक को देखते ही बोले- तुम क्षुल्लक और अर्द्धरात्रि में क्या आवश्यकता थी तुम्हें विचरण करने की। अति आवश्यक संदेश लेकर आया हूँ। श्रुतसागर महाराज ने अपने निमित्त ज्ञान के माध्यम से जान करे बताया कि 700 मुनियों पर उपसर्ग आया है, उसके नायम अकम्पनाचार्य हैं, उनको बचाने का साहस मेरे में नहीं है। उन्होंने कहा कि आपके अन्दर (विष्णु कुमार) शक्ति है। विष्णु कुमार मुनि बोले मैं क्या कर सकता हूँ? मैं इतना कर सकता हूँ कि आत्मा का ध्यान कर सकता हूँ और मेरे अंदर कोई शक्ति नहीं है तब क्षुल्लक जी महाराज कहते हैं कि महाराज ने कहा है कि आपके पास ऐसी शक्ति प्रकट हुई है जिस शक्ति का आप प्रयोग कर सकते हैं। विष्णु सागर मुनि कहते हैं कि मैं एक तुच्छ महाराज हूँ मेरे अंदर कोई शक्ति नहीं। महाराज भूल गये हैं कि वह शक्ति उन्हीं महाराज के पास है। वे निमित्त ज्ञानी हैं, अवधि ज्ञानी हैं तब क्षुल्लक महाराज कहते हैं कि महाराज किसी-किसी को अवधि ज्ञान होता है और किसी-किसी को मनः पर्ययज्ञान, लेकिन ऋद्धि ज्ञान नहीं है। उन्होंने अवधि ज्ञान का सदुपयोग करके ही मुझे यहाँ भेजा है। आप ऋद्धि का प्रयोग कीजिए। विष्णु कुमार मुनि को विश्वास नहीं हुआ कि मेरे पास कोई शक्ति है। साधु को अपनी शक्ति का भान नहीं होता है। सच्चे मुनि अपनी शक्ति का भान करने का प्रयास भी नहीं करते। मुनि जीवन भर साधना करते हैं लेकिन यह परिणाम नहीं आता है कि मैंने इतनी बड़ी साधन की है मेरे अंदर शक्तियाँ जागी हैं कि नहीं, मेरे अन्दर अतिशय प्रकट हुआ है कि नहीं।

मेरे अंदर कोई चमत्कार प्रकट नहीं हुआ कि इसकी परीक्षा करने का प्रयास नहीं करते हैं यही सच्चे साधुओं की विशेषता होती है। लेकिन दिगम्बर साधु में अपार शक्ति होती है 26 घंटे में 3 घंटे की साधना से किसी देवता पर लक्ष्य करके दृष्टि फेंक दे तो सारे देवता-हाथ जोड़कर खड़े जो जायेंगे ऐसी साधन होती है दिगम्बर साधुओं की। एक घंटा दोपकर में एक घंटे सायंकाल और एक घंटा ब्राह्ममुहूर्त की साधना होती है इस प्रकार तीन घंटे होते हैं। लेकिन दिगम्बर साधु की साधना इन देवताओं के लिए नहीं होती है। बल्कि परम देवता जो कि आत्मा में बैठ हुआ है उस परमात्मा के दर्शन के लिए दिगम्बर मुनि की साधन होती है।

विष्णु कुमार मुनि महाराज कहते हैं कि क्षुल्लक महाराज परेशान मत करो कोई दूसरे को खोजो। देर हो जायेगी मेरे पास कुछ नहीं। यदि आपके पास कुछ नहीं है तो मैं कहता हूँ कि आप हाथ फैला दीजिए तुम्हारे हाथ में चमत्कार दिख जायेगा मुझे

विश्वास है। ऐसा क्षुल्लक जी महाराज कहते हैं। सच्चे मन से श्रावक के अंदर साधु के ऊपर विश्वास हो तो साधु के पास अतिशय नहीं हो तो अतिशय प्रकट हो जाता है। एक बार की घटना है सारी प्रजा देखकर आई है कि मुनिराज को कोढ़ हो रहा है। वह राजा से आकर कहती है कि दिगम्बर मुनि कोढ़ी होते हैं, इनकी साधना में इतना भी अतिशय नहीं कि अपना कोढ़ देर कर सकें। इनको भगाओं नहीं तो अपने नगर में कोढ़ फैल जायेगा। एक सम्यग्दृष्टि श्रावक खड़ा हो जाता है और कहता है कि कौन कहता है कि दिगम्बर मुनि कोढ़ी होते हैं। मेरे मुनिराज कोढ़ी नहीं हैं। सब हँस गये। सब कहने लगे कि यह अपनी आँखों से देखकर आया है। लेकिन वो श्रावक भी कहता है कि मेरी भी आँखें हैं मैं भी देखकर आया हूँ कि कोढ़ी नहीं है। सारी जनता कहती है राज दरबार कहता है कि आज तो इसकी हँसी उड़ाओ। राजा सोचता है कि इतनों की सुनूँ कि एक की मानूँ। राजा कहता है कि प्रभाल काल में हम चलेंगे और निर्णय करेंगे कि दिगम्बर मुनि कोढ़ी है कि नहीं। अब बड़ी आफल आ गई उस श्रावक को मालूम था कि मेरे मुनि कोढ़ी हैं। लेकिन जब मुनिराज की निंदा होने लगी तो कहता है कि नहीं हो सकते मेरे मुनि कोढ़ी। झूठ, धरम की रक्षा के लिए बोला उसको मालूम है कि मेरे महाराज कोढ़ी हैं लेकिन राजा के सामने कहता है कि मेरे मुनिराज कोढ़ी नहीं हो सकते। क्या उसको ये डर नहीं कि जब फैसला होगा तो मुझे फाँसी होगी? लेकिन सम्यग्दृष्टि कहता है कि मैं अपनी मुनि को कोढ़ी सिद्ध नहीं कर सकता, मैं मरूँगा और क्या होगा। वह श्रावक रात में मुनिराज के पास जाता है। कहता है बचाओ महाराज मुझे नहीं आपके इस दिगम्बर धर्म, वीतराग शासन को बचा लीजिए अन्यथा प्रभात काल होते ही मुझे तो फाँसी मिलेगी और इस शासन में कोई वीतराग शासन का अनुयायी नहीं रह पायेगा अधर्म फैल जाएगा। महाराज धर्म को बचाओ! मुनिराज कहते हैं, भाई मैं क्या कर सकता हूँ तुमने झूठ बोल दिया। तुम तो कह देते कि हमारी महाराज कोढ़ी हैं, तूने सत्य क्यों नहीं कह दिया कि महाराज कोढ़ी हैं। मैं अभी भी नहीं कह सकता हूँ कि मेरे महाराज कोढ़ी हैं आँखों से देख रहा हूँ। महाराज ने कहा भाई मैं क्या कर सकता हूँ तूम झूठ बोले। सबेरे निर्णय हो जायेगा मैं अपनी शक्ति का प्रयोग अपने लिए नहीं कर सकता हूँ जाओ। वह रोने लगा। देखिए सबेरे क्या होता है जिसके बीच रात है फिर कल की क्या बात है। अभी रात और है सो शान्ति से सो जाओ। महाराज सोने की बात कह रहे हो आप! अब तुम आओ वो चला गया गुरु आज्ञा मान कर के। रात्रि में मुनिराज बैठते हैं और भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि मुझे तो कोढ़ हुआ है नहीं, और जिस शरीर को कोढ़ हुआ है उस शरीर से धर्म का लोप होता है तो आप जानो, और इस शरीर के कोढ़ मिटने से धर्म की रक्षा होती है तो आप जाने। मैं तो ध्यान में बैठता हूँ क्यों कि सुबह क्या होने वाला है वह भी आप जानो। ऐसा सोचकर महाराज ध्यान में लीन हो

गये और स्तोत्र की रचना हो गई - "एकीभाव स्तोत्र"। एकीभाव स्तोत्र का अर्थ क्या है? 'मैं मात्र अकेला हूँ मेरा कोई नहीं है' भावना भाते गये एकीभाव स्तोत्र चलता गया। कुछ रोग दूर होता चला गया। प्रभात काल होता है। प्रजा एवं राजा सब आते हैं और देखकर आश्चर्य चकित होते हैं कि काया इतनी चमक रही है कि मानो सारे सूर्यो का एक साथ उदय हो गया है। राजा कहता है कि इन सारे मंत्रियों को सूली पर चढ़ा दो ऐसे दिगम्बर मुनि को कोढ़ी कहा था जिन की कंचर सी छाया है! और श्रावक से कहते हैं कि उसको सिंहासन दे दो जिसने कहा था कि गुरु कोढ़ी नहीं होते हैं और सत्य कहा था। बोलिए भाई अब न्याय करिये सत्य क्या था? क्या महाराज कोढ़ी नहीं थे तो श्रावक झूठा हुआ था? फिर इतना साहस है तुममें कि तुम अपने साधर्मि भाई को झूठा सिद्ध कर सकते हो? कौन हाथ उठाये कि जो यह कहता है कि श्रावक झूठा था। किसी को साहस नहीं होता कि अपने जात भाई को झूठा सिद्ध कर दे। मुनिराज कहते हैं कि श्रावक सच्चा था देखो यह कितना सत्य है। यदि सत्य बोलने से धर्म पर विपदा आती है तो सत्य नहीं बोलना चाहिए और असत्य बोलने से विपदा टल जाती है तो उस असत्य को आलम्बन श्रेयस्कर हो जाता है उसके झूठ में अतिशय था। उसने सत्य में अतिशय सुने होंगे लेकिन कभी-कभी झूठ में भी अतिशय होते हैं। दुनिया कहती है कि सत्य में अतिशय होता है लेकिन तुम्हें यह सुनकर लग रहा होगा कि असत्य में भी अतिशय होता है। अतिशय घट गया और राजा कहता है कि सबको शूली मिलेगी। मुनि कहते हैं राजन शान्ति से सुनो मेरी बात। मंत्रियों और प्रजा ने भी झूठ नहीं बोला था और श्रावक ने झूठ नहीं कहा था। अभी भी एक अँगुली में कोढ़, शेष है ये सत्य है कि मैं कोढ़ी था। श्रावक की शक्ति ने मेरी काया बना दी मैंने नहीं बनाई! एक श्रावक की भक्ति इतनी ज्यादा उमड़ी कि उसने भरी सभा में झूठ बोल दिया। उसकी भक्ति ने इतना अतिशय दिखाया कि मेरी कंचन सी काया हो गई। बताओ वह अतिशय उन मुनिराज में था या उस भक्त श्रावक में था? तुम ढूँढते हो अतिशय मुनियों में, शास्त्रों में, भगवान् में अतिशय ढूँढते हो तुम। हमारी जिनवाणी कहती है कि अतिशय तो तुम्हारे अंदर हृदय में भरा पड़ा है। जितना तुम्हारा हृदय निश्छल होकर समर्पित होता जायेगा उतना ज्यादा गुरुओं में देवों में शास्त्रों में अतिशय प्रकट होता चला जाएगा। अपने मस्तक की शक्ति जागाओ। भगवान् की गुरुओं की शक्ति मत देखो। अपने मस्तक की शक्ति देखो तुम्हारे पास कितनी शक्ति है और जिस दिन तुम अपने मस्तक की शक्ति प्रकट कर दोगे उस दिन तीन लोग में चमत्कार ही चमत्कार हो जाएगा। वही भगवान् एक के लिए चमत्कारी सिद्ध है और वही भगवान् के लिए चमत्कारी सिद्ध नहीं होते। भगवान् पक्षपाती नहीं है। पक्षपाती है तेरी शक्ति, पक्षपाती है तेरा हृदय, तेरा मर्मपण पक्षपाती है। जब हम पक्षपाती भक्ति रहेगी तब तक साक्षात् अर्गहन्त परमेशी भी पक्षपाती हृदय के अंदर अतिशय प्रकट नहीं कर सकते।

अब हम अपने मूल विषय पर आते हैं। क्षुल्लक जी कहते हैं हे महाराज! आपको अपनी शक्ति नहीं दिख रही है। महाराज! वो तुम्हें नहीं दिख सकती है। आँखों से कभी अपनी आँखें नहीं दिखती हैं। हमें दिख रही है कि महाराज तुम्हारी आँखों में कितनी चमक है। आपकी शक्ति को भक्त देख सकता है। भक्त को भगवान् का चमत्कार दिखता है भगवान् की आँखों को कभी भगवान् का चमत्कार नहीं दिखता है। अतः बढ़ाया गया हाथ पार कर गया पर्वत को। विष्णु कुमार कहते हैं कि शक्ति मेरे पास है यह मुझे पता चल गया है लेकिन मैं क्या करूँ मैं मुनि हूँ मुझे शक्ति का प्रयोग करने की आज्ञा आगम में नहीं है। मैं शक्ति का प्रयोग नहीं कर सकता। फिर भी करना है क्षुल्लक जी कहते हैं। सात सौ मुनियों को बचाना है। तुम्हें तो तोक्ष जाना है लेकिन पहले मोक्ष मत जाइये पहले सात सौ को भेजिए फिर जाइये। क्षुल्लक जी का उपदेश मुनिराज के लिए चालू है। कुछ सोचने के बाद महाराज जैसे-जैसे तैयार हुए कि चलो कोई बात नहीं प्रयोग करता हूँ लेकिन तुरंत ही आगम की आवाज आ गई सावधान खबरदार जो मुझसे लिया था वो लौटा दो फिर जाओ जहाँ जाना है।

आप लोग भी करते हो जब ग्राहक दूसरी जगह जाने लगे तो कहते हो कि जब जा सकते हो कि पहले हमार उधार दे दो फिर दूसरी दुकान पर जाना। इसी प्रकार आगम कहता है कि मेरा मुनि पद वापस करो फिर जाओ तुम। विष्णु कुमार भयभीत हो जाते हैं कि कैसा संकट एक ओर सात सौ (700) मुनियों की रक्षा दूसरी ओर स्वयं के मुनि पद की बलि। मुनि पद कैसे मिलता है बन्धुओ! सैकड़ों भव तक जिस आत्मा ने मुनि बनने की भावना भायी हो उसे एकाध भव में मुनि बनने का अवसर मिलता है। हजारों भव तक वह भगवान् के सामने भक्ति करता है और कहता है "मेरे ना चाह कुछ और ईश रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश" सैकड़ों भव लग जाते हैं सैकड़ों भवों से कहता है कि मेरी आत्मा में रत्नत्रय प्रकट हो जाए। ऐसी भावना ना जाने कितने भवों से की होगी जब ऐसे पुण्य का संचय हो जाता है तब एक भव में मुनि बनने का परिणाम बनता है।

साधारण खेल नहीं है मुनि बनना। बच्चों का नंगापन नहीं है मुनि बनना। मुनि बनने का अर्थ है अपने भोगों की पूरी शक्ति लगा देना। तीव्र अतिशय पुण्य का उदय आता है, एक गृहस्थ के अंदर परिणाम आता है कि मैं महाव्रत धारण कर लूँ। अन्यथा मुनिव्रत धारण करने का परिणाम अच्छे-अच्छे चक्रवर्तियों को नहीं आता है। अच्छे-अच्छे वैभव शालियों के मन में नहीं आता है। बारह भावना में पढ़ा एक तो मुश्किल से निगोद से निकले फिर निकलते-निकलते आर्य कुल में संज्ञी पंचेन्द्रिय बने। संज्ञी पंच इन्द्रिय में दुर्लभ से दुर्लभ मुनिव्रत पाना और ऐसे मुनिव्रत की आज बलि चढ़ाने की बात आ गई। महाराज कहते हैं कि ये क्षुल्लक जी कह रहे हैं कि दे दो मुनि पद की बलि। विष्णु कुमार

कहते हैं कि मेरी आत्मा से पूछो कि मैं कैसे चढ़ा हूँ जिसको इतना साहस करके प्राप्त किया है। क्या पता पुनः न ले पाया तो, क्या पता कार्य करने गया उसी समय आयु पूर्ण हो गई तो मैं तो बिना मुनि पद के मर गया। मैंने अपने पिता के साथ दीक्षा ली थी। विष्णु कुमार के पिता पद्मराज चक्रवर्ती थे। उनके साथ दीक्षा ली थी। उनके साथ दीक्षा ली थी। जेष्ठ पुत्र थे विष्णु कुमार। विष्णु कुमार को बुलाया, बेटा तू राजगद्दी सम्भाल ले मैं वन की ओर जाता हूँ। विष्णु कुमार पूछते हैं पिताजी आप क्यों छोड़ रहे हैं और राजगद्दी को? पिताजी कहते हैं-कि मैं इस लिए छोड़ रहा हूँ कि इसमें कोई सार नहीं है। ये सब व्यर्थ है। मायाजाल है। तो विष्णु कुमार कहते हैं तो क्या पिता श्री? जहाँ तुम्हें सार नहीं दिखा तो मेरे को क्यों सार, (जानवरों को बाँधने का स्थान) में बाँधकर जा रहे हो? क्या मुझे ढोर समझ रखा है। तुम्हें सार नहीं दिखा और मुझे बाँध रहे हो लगता है कि आपका पुत्र पशु है आपका पुत्र ढोर है। यदि मैं आपका पुत्र हूँ तो ढोर हो ही नहीं सकता। मैं आपको पुत्र हूँ तो जो तुम्हारी गति सो हमारी गति, जो तुम्हारी मति सो हमारी मति, जहाँ तुम्हें सार मिलेगा वहीं पर मेरा सार रहेगा, जो तुम्हें निस्सार है वहीं मुझे निस्सार है। अतः पिता और विष्णु कुमार छोटे भाई को राज्य देकर चले गये वन के लिए। विष्णु कुमार कहते हैं कि मैंने पिता का अनुकरण किया था। क्षुल्लक जी सोचते हैं कि हे भगवान् मामला बिगड़ ना जाये ये फिर से ध्यान में ना बैठ जाये तो बड़ी आफत हो जावेगी। इनकी बुद्धि थोड़ी सी नीचे लाओ। मुनिराज ने सोचा कि चलो कोई बात नहीं चलता हूँ मन मार कर चलता हूँ। ये छोड़ता हूँ मुनिपद। और चलो 700 मुनियों की रक्षा करता हूँ। विचार करें यहाँ पर कि एक मुनि ने वैयावृत्ति करने के लिए अपना मुनि पद छोड़ दिया, केवल ज्ञान छोड़ दिया मुनि की रक्षा के करने के लिए मुनि सेवा करने के लिए। विष्णु कुमार कहते हैं चला जा, मुक्ति मुझे नहीं चाहिए! मोक्ष कहता है मैं तुम्हारी दरवाजे खड़ा हूँ। मुक्ति लक्ष्मी कहती है कि मैं वरमाला लिए खड़ी हूँ। वो कहता है चली जा अभी आज मुझे मोक्ष नहीं चाहिए यदि मुझमें हिम्मत होगी तो फिर से बुला लूँगा।

**खुदी को कर बुलंद इतना की हर तदवीर से पहले
खुदा बन्दे से खुद पूछे बता तेरी रजा क्या है?**

अपनी खुदी को इतना बुलंद करे लो कि जब चाहे केवल ज्ञान प्राप्त कर लूँगा। यह विश्वास रहे। साहस करके चल देता है वहाँ पर जहाँ पर एक दर्दनाक घटना घट रही है। देखते हैं विष्णु कुमार-मुनिराज जमीन पर लेटे हैं और बलि राजा की समर्थक जनता खड़ी-खड़ी हँस रही है।

इधर यज्ञ चल रहा है। इन्होंने अपने गृहस्थ भेष में अपने छोटे पद्मराज को अन्तःपुर में जाकर फटकारा-दुष्ट ! उठ! जा! मैंने और पिता जी ने इस लिए राज्य नहीं दिया था। मालूम नहीं यह किसका कुल है? तेरे पिता मेरे पिता चक्रवर्ती थे और अन्त में

निर्वाण को प्राप्त हो गये थे। किनका पुत्र है किनके कुल में जन्मा है? जिस कुल में तीर्थंकर जनमें है उस क्षत्रिय वंश में जन्मा है और उनका पुत्र होकर मुनियों की ये दशा करा रहा है! तुझे शर्म नहीं आती अपने कुल पर कलंक लगाते हुए? धर्म पर कलंक लगा रहा है अपने पर कलंक लगा रहा है और अपने कुल पद भी! अरे जो कुल-कलंकी होता है वो चाहे कितना भी धर्म कर ले लेकिन सद्गति नहीं होती है। सब के पहले कुल को उज्ज्वल करो फिर बाद में धर्म को उज्ज्वल करो। जिस कुल में मुनि उत्पन्न हुए हों वो कुल महान माना जाता है। बन्धुओं जिस कुल में एक भी मुनि बन जाये वह कुल पूजनीय हो जाता है। 10 (दस) पीढ़ियों तक देवता उसकी प्रशंसा करते हैं कि इस कुल में मुनि हुए थे और तू तो 10(दस) पीढ़ी की बात छोड़ दे वर्तमान में तेरे पिता मुनि हुए हैं। यह सुनकर छोटा भाई पद्मराज हाथ जोड़ कर चला गया-मैंने वचन दे दिया और वचन देने का ये परिणाम निकला अब मैं क्या कर सकता हूँ। मैंने सोचा भी नहीं था कि इसका यह परिणाम होगा “बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय”

यहाँ ध्यान रखना कि खलों के लिए किमिच्छिक दान नहीं दिया जाता। कभी खल से ये मत कह बैठना कि माँगले क्या माँगना है। ये तो किसी सज्जन पुरुष से कहना किसी मुनि से भी कह देना। कोई मुनिराज पूछे कि किस का मकान है तो कह देना का आप ही का है तो कोई बात नहीं चल जाएगा। एक बार हुआ था ऐसा, एक व्यक्ति अपने बच्चों को लेकर आया और नमस्कार करा रहा था मैंने कहा किसके बच्चों हैं? महाराज आप ही के तो हैं। मैंने कहा जब बच्चे मेरे ही हैं तो इनको मेरे पास ही छोड़ दे न क्यों ले जा रहा है अपने साथ? वह कहने लगा महाराज तो सांची-सांची मान गये मैं तो ऐसे ही कर रहा था। वह कहने लगा मैं तो नमस्कार कराने लाया था कि आशीर्वाद दे दें आप कि फले-फूलें और आप तो हमारा लड़का ही छुड़ाने लगे। तो ऐसी विपरीत स्थिति बन जाती है कभी-कभी। साधुओं से ऐसा बोल दोगे तो कुछ नहीं होगा, वह तो मैंने ऐसे ही उसे चिढ़ाने के लिए कह दिया तो विष्णु कुमार कहते हैं कि तुमने किमिच्छिक दान दे दिया, ये तो विचार करते कि ये परदेशी मंत्री हैं जिनके धर्म की परीक्षा लिये बगैर तूने मंत्री पर दे दिया। मंत्री पद तो उसे दिया जाता है जो धर्म का आस्तिक होता है जिसके कुल परम्परा का ज्ञान होता है। जिसके सम्बन्ध में सारी जनता जानती है और तूने उसको मंत्री पद दे दिया जो परदेश से आये थे। भटकते-भटकते एक युद्ध तुझे जिता दिया तो तू इतना फूल गया कि किमिच्छिक दान दे बैठा। इतना विवेक तूने खो दिया। खलों को कभी किमिच्छिक दान मत देना आप लोगा ये शिक्षा ले लेना। कभी कोई खल आ जाये तो उससे कह देना कि जितना मैं दे रहा हूँ उतना लेना है तो ले ले वर्ना जा। यदि उसने तुम्हारे ऊपर कोई उपकार किया है तो दान देना मगर तुम दे रहे हो उतना ले लो तो ठीक वर्ना मत लेना। पद्मराज कहते हैं मैं करूँ सात दिन के लिए तो मैं राज्य दे चुका हूँ।

यदि वह मेरे ऊपर आक्रमण भी करवा दे और मुझे बंदी बना ले तो बना सकता है क्योंकि राजा वह है। मैं घोषणा कर चुका हूँ कि सात दिन तक सारी सेना इनके आधीन है। विष्णु कुमार कहते हैं ठीक है अब मैं ही कुछ करता हूँ और पहुँच गये वामन का रूप लेकर के, दिखा ही माया, छोड़ दी अपनी मूलकाया, वामन का अवतार लेकर पहुँच गये।

अब यहाँ के बाद की कथा दर्शन एवं वैष्णव दर्शन में एक सी चलेगी। यहाँ तक थोड़ा सा भेद था। वैष्णव दर्शन में विष्णु भगवान् अवतार लेते हैं और यहाँ श्री विष्णु कुमार लेते हैं। छोटे से ब्राह्मण बन गये। और बलि जैसे ही सुबह उठ कर आया, दान शाला में कोई यज्ञ करता है तो यज्ञ करने के पहले दान दिया जाता है। आप लोग विधान करते हो। विधान की पूजा शुरु करने से पहले बाहर किसी को दान देकर आया करो। ये दान की परम्परा है भगवान् के दर्शन करने आये हो दरवाजे पर किसी भिखारी के कटोरे में पैसे डाल कर आया करो ये यज्ञ की परम्परा है। आप जो दर्शन करते हो यह भी एक छोटा यज्ञ है। छोटी सी पूजा है। कोई भी पूजा अनुष्ठान करने से पहले उन दरिद्रों को देकर जाओ। कुछ आयतनों को देकर जाओ देव शास्त्र गुरु को कुछ देकर जाओ। फिर भगवान् का दर्शन करो पहले दान की घोषणा करो। इसलिए आपने देखा होगा पंचकल्याणक बाद में होते हैं दान की घोषणायें पहले होती हैं। ये आगम की परम्परा है। तुम लोग कहते हो कि ये कौन सा धर्म है पहले पैसा बाद में पूजा! पहले पूजा तो कर लेने दो बाद में दे दंगे। और मैं कहता हूँ कि गजरथ की फेरी में बैठने से पहले तुमने दे दिया सो दे दिया। गजरथ की फेरी फिरी और तुम फराए हुए। फिर तो तुम्हें अदालत से वारण्ट भी निकाल दिया जाए तो भी तुम पकड़ में आने वाले नहीं हो। तुम्हारी नियत, हमारे आचार्य जानते थे। क्या कहते हैं-

**गरज परे कुछ और है गरज सरे कुछ और
तुलसी भांवर के परे नदी सिरावें मौर**

आपकी गरज पड़ती है तो आज मुकुट को सिर पर उठा लेते हो। विवाह के बाद नदी में सिरा देते हो। जब मुकुट सप्तमी का दिन आता है उस दिन मौर को नदी में सिरा देते हैं। तुलसीदाम जी उस समय नदी में स्नान कर रहे थे उन्होंने देखा, अरे जिस के माध्यम से राजा बना था और गरज हटी तो नदी सिरावे मौर। एंमे ही आप लोग हो भगवान् से यदि कुछ माँग रहे हो और अगर तुम्हारी सट जाये तो तुम भगवान् को भी छला देते हो। ऐसी स्थिति आ जाती है तो पहले दान बाद में काम। ये धर्म का नियम है। इसलिए पहले दान करो बाद में यज्ञ। बलि राजा भी यज्ञ कर रहा था। सबसे पहले दान शाला में गया। ब्राह्मण आ गया सामने। राजन सुना है आप किमिच्छिक दान बाँट रहे हो। राजन कहता है हाँ हाँ बाँट रहा हूँ। माँग ले क्या माँगना है। पहले पक्का करो कि दोगे कि नहीं। अरे मैं दूँगा। नहीं जलाजलि दो। ब्राह्मण बिना अग्नि साक्षी के दान स्वीकार नहीं करता है और पता तुम बदल

जाओ। अग्नि साक्षी कर देता है बलि, तब ब्राह्मण कहता है कि मुझे कुछ नहीं चाहिए मेरी काया छोटी सी, मेरे पेट छोटा सा बस मुझे तीन पैर जमीन चाहिए।

बलि राजा हँसने लगता है खिलखिला कर जैसा रावण हँसता था। कहता है अरे यह तूने क्या माँगा। मेरी बेइज्जती कर दी। इतना बड़ा राजा दान दे रहा है और तू तीन पैर जमीन माँग रहा है! और तेरे पैर नन्हें नन्हें से हैं और कुछ मांग ले। ब्राह्मण कहता है कि सच्चा ब्राह्मण वो ही है जो एक बार माँगता है देना या नहीं। देता हूँ क्या करूँ नहीं तो अभी ये नाराज हो जायेंगे। ब्राह्मण नाराज हो गये तो अभी श्राप दे देंगे क्योंकि ब्राह्मण का श्राप अकाट्य होता है ऐसा पुराणों की मान्यता है। अतः वह कहता है ठीक है नाप ले। और जैसे ही नापने गया- पैर बढ़ता गया बढ़ता गया वह ब्राह्मण मेरु प्रमाण बढ़ गया! एक पैर मेरु पर्वत पर रखते हैं तो एक मानुषोत्तर पर्वत पर! ऐ बलि बता तीसरा पैर कहाँ पर रखूँ मैंने पूरी पृथ्वी नाप ली। झुक गया मस्तक, मेरे पुण्य का समापन हुआ।

जब तक तोरे पुण्य का बीता नहीं करार।

तब तक तुझको माफ है, अवगुण करे हजार

पुण्य का प्रताप था मेरे अवगुण सब माफ होते जा रहे थे। आज मेरा पुण्य समाप्त हो गया। मेरी पीठ बची है उसी पर पैर रख दीजिए। पीठ पर पैर रखते हो कहा कि संकल्प कर कि आज के बाद किसी मुनिराज पर उपसर्ग नहीं करूँगा। यज्ञ समाप्त हो गया। मुनिराज जो बेहोश पड़े हैं विष्णु कुमार सारे श्रावकों को बुलाते हैं निकल आओ कायरो जो दरवाजों के अंदर बैठे हो! मुनिराजों के मरने से पहले तुम क्यों नहीं मर गये! तुम लोगों के आधीन राजा रहता है और प्रज्ञा इतनी कमजोर हो गयी कि राजा के अत्याचार सहन कर लिए। करो सब मुनियों की सेवा।

मुनियों का उपचार किया गया। प्रभात काल का समय है मुनियों के लिए सिर श्रावक अपनी गोदी में रखे सहला रहे हैं। सब अपने अपने काम में लग गये। कोई उन हवन कुंडों को हटा रहा है कोई वातावरण को शुद्ध करने में लगा है। कोई उन हड्डी माँस आदि को हटाने में लगा जो दुर्गन्धि फैला रहे थे। और मुनियों को होश धीरे-धीरे आता है। विष्णु कुमार हाथ जोड़े खड़े हैं। हे भगवान् किसी के प्राण न निकल जायें, किसी की श्वास न निकल जाए नहीं तो जिनकी रक्षा के लिए मैंने अपना वेष छोड़ा, उनकी ही रक्षा ना कर पाऊँ। पुण्य का उदय था 700 मुनि उठ गये और कहते हैं णमो अरिहन्ताणं णमो सिद्धाणं, सब एक साथ सिद्ध भक्ति पढ़ते हैं और

ध्यान में बैठने लगते हैं। विष्णु कुमार कहते हैं अब ध्यान में बैठने की आवश्यकता नहीं, अब हम लोगों का ध्यान करो, उपसर्ग टल गया अब उपसर्ग नहीं है। उनके जो नायक अकम्पनाचार्य थे वे देखते हैं वास्तव में अब यहाँ उपसर्ग नहीं है! सब हाथ जोड़े खड़े हैं जो अपराधी था वो भी हाथ जोड़े खड़ा है विष्णु कुमार के बाजू में। विष्णु कुमार कहते हैं हे महाराज महाराज क्षमा करो जिसने वे पाप कया है वह पापी भी सामने खड़ा है। उपसर्ग करने वाले ये चारों आपके चरणों का रज लेने खड़े हैं आपका बरदहस्त चाहते हैं। आपको आशीष चाहते हैं कि ऐसे परिणाम अब किसी भव में न हों। हे महाराज इनके लिए सदबुद्धि और प्रायश्चित्त दीजिए। मैंने अनर्थ किया है मगर इन चारों को सुधारने के लिए किया है इस लिए जो प्रायश्चित्त हो मुझे भी वह दीजिए।

महाराजों को चर्या के लिए उठाते हैं। हजारों चौका लगाते हैं। मगर हमारे दिग्म्बर साधु तो दिन में एक ही चौके को पवित्र करते हैं। हजारों श्रावकों के चौके खाली रहे। वे पश्चाताप करते रहे। मैं क्या करूँ 700 घर पवित्र हो गये बाकी जो खाली रहे गये वे विष्णु कुमार से कहते हैं तुमने सबके संकट दूर किये हमारे भी संकट दूर करा दो। हमारे यहाँ भी आहार करवा दो। क्या करें सब कुछ हो सकता है मगर साधु दुबारा चर्या के लिए नहीं उठ सकता। विष्णु कुमार कहते हैं अब क्या करें। सब रो रहे हैं। ऐसे रोते कैसे छोड़ जायें वे कहते हैं कि एक रास्ता है कि जिन श्रावकों के यहाँ मुनिराजों के आहार हुए हैं उन श्रावकों को तुम अपने यहाँ आहार करवा दो तो मुनिराज का आहार हो जायेगा। ऐसा श्रावक मानते हैं और अपने-अपने घर सबने दूसरे के निमंत्रण किये और फिर जितने बचे रहे कहा कि अब तुम उन श्रावकों को भोजन करा दो तो तुम परम्परा से दानी हो जाओगे। सबने अपने घर में निमंत्रण किये। सबने रक्षा सूत्र बाँधे। विष्णु कुमार कहते हैं कि करो संकल्प कि मेरे प्राण निकल जायेंगे मगर कभी रत्नत्रयधारियों पर उपसर्ग नहीं आने दूँगा।

यह इस तरह विष्णु कुमार ने संकल्प कराया था आज भी एक मुनि तुमसे कह रहा है कि नियम लो कि कभी भी दिग्म्बर मुनि पर कैसा किंचित मात्र भी उपसर्ग आयेगा तो मैं उसे दूर करने का प्रयास करूँगा।

विष्णु कुमार इन सारे विधिविधानों का विधान करके प्रायश्चित्त लेकर पुनः मुनिमुद्रा धारण कर ध्यान में बैठ गये और केवलज्ञान प्राप्त कर उसी भव में सिद्धत्व को प्राप्त हो गये।

'चित्तमत्कार' से साभार

हितमेव न वेत्ति कश्चन भजतेऽन्यः खलु तत्र संशयम्।

विपरीतरुचिः परो जगत्त्रिभिरज्ञान तमोभिराहतम्॥

भावार्थ- जगत में तीन प्रकार के अज्ञानी हैं। पहले जो अपने हित को जानते ही नहीं। दूसरे वे जो हित को जानते हुए भी उसके विषय में संदेह करते हैं और तीसरे वे जो हित को अहित और अहित को हित जानते हैं। इस प्रकार सभी प्राणी इन तीन प्रकार के अज्ञानों से नष्ट हो जाते हैं॥

जल क्यों छानें

मुनिश्री निर्णयसागर जी

जिनागम में जैसे जल छानने की विधि कही है, तदनुसार कहता हूँ। हे भव्य जने! प्रेम सहित हृदय में धारण करो। जो 48-48 मिनट के अंतर से जल छानकर पीता है उसे परम विवेकी दयावंत श्रावक जानो। छाने जल की मर्यादा दो घड़ी की है। इसलिये दो घड़ी (48 मिनट) के बाद पुनः जल छानकर पीना चाहिए। खूब उबले पानी को 24 घंटे, उबले पानी को 12 घंटे और प्रासुक पानी को 6 घंटे तक प्रयोग कर सकते हैं, इसके बाद पानी में सम्यूर्धन जीव उत्पन्न होने लगते हैं। नवीन वस्त्र से यत्नपूर्वक जल छानना चाहिए। उन छाने जल की एक भी बूँद नीचे न डालें। अज्ञानी लोग जीर्ण-शीर्ण वस्त्र से जल छानते हैं तथा छानते समय अनछना जी पृथ्वी पर डाल देते हैं। इससे बहुत पाप लगता है। जिसे दया का विचार नहीं है वह श्रावक नहीं है उसे अज्ञानी जानना चाहिए। जिसे जल छानने का विवेक नहीं है, उसे धीवर के समान समझना चाहिए। धीवर को एक वर्ष में जो पाप लगता है वह बिना छाने पानी बरतने में लगता है अथवा कोई महा अज्ञानी भील ग्यारह बार दावाग्रि लगाता है, इसमें जितना पाप लगता है उतना पाप अनछाने पानी बरतने में लगता है उस मनुष्य को भील के समान बताया है। मकड़ी के मुख से निकले तंतु को पानी में डुबोकर उससे जो बूँद टपकाई जाती है। उसे में जो सूक्ष्म जीव होते हैं, यदि वे भ्रमर से बराबर विचरें तो तीन लोग में न समायें। अर्थात् पानी की एक छोटी बूँद में असंख्यात जीव होते हैं।

छत्तीस अंगुल लम्बे और चौड़े वस्त्र को दुहरा कर उससे पानी छानना चाहिए। जिवानी को उसी जलाशय के जल में विसर्जित करना चाहिए जहाँ से जल निकाला गया है। कितने ही लोग जिवानी ऊपर से फेंक देते हैं। जिसमें जीव बीच में दिवाल आदि से टकरा कर नष्ट हो जाते हैं, तथा दूसरे जीवों को भी नष्ट करते हैं। इसलिए जिवानी जली की सतह तक पहुँचाना चाहिए तथा दूसरों के लिए भ्रंजी जल छानने का उपदेश देकर समझाना चाहिए। आलास और प्रमाद को छोड़कर जल छानो। जल छानते समय दूसरों से बातें नहीं करना चाहिए। इतनी सावधानी रखो की जल का एक कण भी नीचे न पड़े। यत्न करते हुए भी एक कण नीचे गिर जावे तो अपनी बहुत निंदा करो। शक्ति अनुसार प्रायश्चित्त लो। हृदय में जिन आज्ञा का पालन करो। उपरोक्त कथन कविवर किशन सिंह जी ने क्रियाकोष में जिनेन्द्र आज्ञा से किया है।

आजकल के हिंसा प्रधान वातावरण में लोग पानी छानना पिछली संस्कृति कहकर स्वच्छ संस्कृति की उपेक्षा करते हैं। उन लोगों को भी प्रेमपूर्वक प्रसंगानुसार समझना चाहिए। पानी क्यों छानें? पानी छानने के क्या लाभ हैं? पानी छानने की मूल दृष्टि

हिंसा धर्म की सुरक्षा करना है। दूसरी दृष्टि शारीरिक स्वास्थ्य रक्षा है। पानी को सही तरीके से छानकर उबलाकर प्रयोग करें तो मेरा अनुभव है कि 90 प्रतिशत बीमारी उत्पन्न ही नहीं होंगी। जैन शास्त्रों में जिस बात को हजारों वर्षों पहले कहा है, वही बात आज का विज्ञान दुष्परिणामों को भोगने के बाद कहता है। इसलिए आज के विज्ञान के विद्यार्थियों को बिना किसी तर्क के जैन शास्त्रों के नियमों को स्वीकार कर लेना चाहिए। इसी प्रकार विज्ञान पहले वनस्पति को जीव नहीं मानता था। किन्तु 1911 में डॉ. जगदीश चन्द्र वसु ने वनस्पति में जीव सिद्ध करके दिखा दिया। इस तरह जैन दर्शन में कोई व्यक्ति या सम्प्रदाय का उपदेश नहीं है। इसमें तो समग्र समाज की समृद्धि का उपदेश है। पानी छानने के लिए खादी या सूती वस्त्र उपयुक्त है। जिस बर्तन में पानी छानना है उससे चार गुना चौड़ा वस्त्र अवश्य होना चाहिए। सामान्य से 36 अंगुल लम्बे चौड़े कपड़े का कथन है कपड़े से सूर्य का प्रकाश न दिखे। इतनी मोटाई होनी चाहिए। कपड़े को हमेशा दोहरा करके छानना चाहिये। कितना भी मोटा कपड़ा हो, इकहरे कपड़े से पानी नहीं छनता है। क्योंकि दोहरे कपड़े के बीच में गीला होने के बाद एक पानी की जाली बन जाती है, मूलतः उसी से पानी के जीव रुकते हैं। पुरा पानी छानने के बाद धीरे से जिवानी बाल्टी में पलट दें। फिर छाने पानी से हाथ धोकर छाने पानी को छत्रे के ऊपर डालते हुए पूरी जिवानी बाल्टी में भेज दें। छत्रे की बाल्टी में अलग जीव रहित प्रासुक स्थान पर निचोड़ दें। जिवानी सहित अच्छी तरह बाल्टी को पानी की सतह तक ले जावें। बाल्टी में नीचे से एक कंडा लगा होता है, उसमें रस्सी बाँधी जाती है। ऊपर कंडे में रस्सी में लगे हुए एस आकार (s) के कुंदे को फसाय जाता है। पानी की सतह पर धीरे से बाल्टी को ऊपर झटका लगाते हैं, इससे बाल्टी उल्ट जाती है। फिर बाल्टी को ऊपर लाकर पुन छानें पानी से धोकर कुँए में नीचे पानी भेज देते हैं। इस प्रकार पानी छानने की विधि अब भी आपको समझ में न आयी हो, तो कृपया किसी अनुभवी त्यागी ब्रह्मचारी आदि से प्रेक्टीकल करवाकर समझ लें। विधि पूर्वक पानी छानने से आपको लाखों लाखों जीव के अभय दान का फल मिलेगा। पानी छानने के अभाव में पाप बँधेगा, जो इम लोक और परलोक में दुखदायी होगा। पानी बावड़ी का हो, नदी का हो, चाहे कुँए का हो, जीव रक्षा आवश्यक है। आगम शास्त्रों में एक कथानक आता है, कि किसी विवेक श्रावक से असावधानी के कारण जिवानी फैल गयी थी। वह साधु महाराज के पास प्रायश्चित्त लेने गया। प्रायश्चित्त मिला कि एक साथ अठारह हजार मुनियों को पड़गाहन करके आहार कराओ तभी आपके पाप की निवृत्ति संभव है। श्रावक घवराया और कह

यह तो कठिन है। तब महाराज ने कहा, घबराओं नहीं, नगर में जो गृहस्थ असिधारा व्रत पालता हो उसके आहार कराने से कार्य पूरा हो सकता है। प्रत्येक दिन एक-एक गृहस्थ पति-पत्नी को आहार कराओ। ऊपर चौके में काला चँदेववा बाँधो, जिस दिन वह सफेद हो जावेगा, समझना मेरा पाप धुल गया। श्रावक ने ऐसा ही किया एक दिन काला चँदेव अचानक सफेद हो गया, जिस दिन विजय विजया नामक दंपति ने भोजन किया। जिवय विजया ने मुनिराज से एक ने कृष्णपक्ष का एक ने शुक्ल पक्ष का ब्रह्मचर्य लिया था। संयोग से दोनों की आपस में शादी हो गयी। दोनों ने संकल्प किया कि व्रत को हम गुप्त रूप से पालेंगे। जब किसी को मालूम पड़ जावेगा तो वह दीक्षा ले लेंगे। मालूम पड़ने पर विजय मुनि और विजया आर्यिका बन जाती है। देखो जिवानी का कितना महात्व है। आप कभी भी पानी छानने में प्रसाद न करना आपको अवश्य सद्गति होगी।

आज सब जगह नल व्यवस्था होती जा रही है। नल का पानी त्याग कर पाना कठिन लगने लगा है। किन्तु आप नहीं जानते की नल के जल में जीव हिंसा के साथ-साथ और भी क्या-क्या खामियाँ (कमियाँ) हैं। ली के पाइप लाइन गटर या सामान्य नालियों से गुजरती है। जब पाइप लाइन में कहीं से जल निकलने लगता है, तो नाली गटर का जल लाइन में और लाइन का जल नाली में मिल जाता है। केंचुएँ आदि जीव भी नील में से निकलीते देखे गये हैं। अब आप ही विचार करो कि नल के जल के नाम पर आप क्या पी रहे हैं? उत्तर मिलेगा गटर का पानी। मार्च 1996 में इंदौर के राजवाड़ा क्षेत्र की पानी की टंकी में डूबकर किसी ने आत्महत्या कर ली थी। हम लोग उस समय सिद्धक्षेत्र सिद्धवर कूट में थे। जब पानी में बदबू आने लगी, तब जनता ने नगरनिगम से शिकायत की पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। एक दिन स्थिति

यह हो गयी कि मेन पाइप से पानी निकलना बंद हो गया। जब कर्मचारियों ने निरीक्षण किया और देखा कि सात आठ दिन पूर्व किसी ने टंकी में डूबकर आत्महत्या कर ली थी। उसमें बदबू आ रही थी तथा शव अधिक गल जाने से अपने आप बिखरने लगा। उसी शव के टुकड़े पाइप के मुख में फंसने से जल निकाम अवरुद्ध हो गया। यह तो एक नगर की एक ही घटना है, अन्यत्र क्या-क्या होता होगा, आप स्वयं विचार करें छोटी काया वाले जीव तो मरते ही रहते हैं। इंदौर के लोगों ने सात-आठ दिन तक पानी के नाम पर क्या-क्या पिया होगा, आप ही विचार करिये। सोचें ऐसे जलपान से क्या आप अपने स्वास्थ्य का खयाल रख पायेंगे? क्या आप अहिंसा धर्म का पालन कर पायेंगे?

जल छानने के कथन को समाप्त करने के पहले छोटी सी एक घटना और रखना उचित समझूँगा। एक माँ ने एक ब्रह्मचारी जी का निमंत्रण किया। समय पर ब्रह्मचारी जी भोजन करने पहुँच गये। भोजन के समय ही माँ ने गर्म पानी छाना। ब्रह्मचारी जी ने विचार किया कि कितना विवेक है, कि गर्म करके पुनः पानी छान रही हैं, क्योंकि तुरन्त पानी छानने पर पानी में अंतराय की संभावना प्रायः समाप्त हो जाती है। फिर भी मन में पूछने का भाव आया, किन्तु ब्रह्मचारी लोग भोजन के समय प्रायः मौन रहते हैं, तत्काल पूछा नहीं। भोजन के बाद पूछा माँ जी! आपने पानी क्यों छाना था, उत्तर दिया-भैया, आपने प्रवचन में कहा था कि प्रत्येक श्रावक को छानकर और गर्म करके जल प्रयोग में लेना चाहिए। मैंने सोचा पानी पहले नहीं छान पाये, इसलिए गर्म करने के बाद में छान लिया, सुनकर ब्रह्मचारी जी अवाक् रहे गये कितना अज्ञानांधकार है, यह भी ज्ञान नहीं कि पानी क्यों छानते हैं, कृपया आप ऐसा न करें। वरन् आप भी पाप के भागीदार होंगे। साथ ही हँसी के पात्र भी बनेंगे।

‘कर्त्तव्य बोध’ से साभार

आंतड में भव्य देवी प्रतिष्ठा समारोह सम्पन्न

अजमेर, श्री दिगम्बर जैन मन्दिर पार्श्वनाथ कॉलोनी आंतड में दिनांक 22 जनवरी से 25 जनवरी, 2003 तक परमपूज्य संत शिरोमणि आचार्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज के परम शिष्य मुनद्वय 108 श्री क्षमासागरजी एवं भव्यसागरजी महाराज ससंघ के पावन सान्निध्य में प्रतिष्ठाचार्य श्री कुमुदचन्द सोनी, अजमेर एवं उनके सहयोगी श्री ज्योति बाबू जैन, उदयपुर के निर्देशन में विधि-विधानपूर्वक वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव का भव्य कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम को सान्निध्य प्रदान करने हेतु मुनि श्री ससंघ 21 जनवरी को सेठ सा. की नसियाजी से जुलूस के रूप में यहां पधारे, जिनका समिति के पदाधिकारियों एवं कॉलोनीवासियों द्वारा मंगल आरती एवं पाद प्रक्षालन द्वारा भावभीना

स्वागत किया गया। प्रतिदिन प्रभात में अभिषेक, जाप्यानुष्ठान एवं नित्यनियम पूजन के बाद मुनि श्री का मंगल प्रवचन होता था। दोपहर को प्रश्न मंच व शंका समाधान व सायं 4 बजे बच्चों के लिए संस्कार-शिक्षण शिविर के बाद रात्रि में गुरुभक्ति का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। रात्रि में शास्त्र प्रवचन के बाद प्रो. सुशील पाटनी के नेतृत्व में श्री दि. जैन संगीत मंडल, अजमेर द्वारा भजन व सांस्कृतिक कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

दिनांक 22 जनवरी को मुनि श्री के मंगल प्रवचन के बाद मदनगंज के श्रेष्ठी श्री रतनलाल पाटनी आर.के. मार्बल्स लिमिटेड द्वारा झण्डारोहण के साथ महोत्सव का शुभारंभ हुआ।

हीराचन्द्र जैन

दिगम्बर प्रतिमा की पहचान

पं. मूलचन्द लुहाड़िया

दिनांक 9 जनवरी के जैन गजट के अंक में भा.दि. जैन (धर्म संरक्षणी) महासभा की प्रबंध कारिणी समिति की लखनऊ में दि. 28 व 29 दिसम्बर को हुई बैठक की कार्यवाही के विवरण में महासभा के उपाध्यक्ष मूर्धन्य विद्वान श्री नीरज जैन का निम्न कथन पढ़ने को मिला :-

श्री नीरज जैन ने कहा कि भगवान के गर्भ में आने से पहले देवी-देवताओं की भूमिका प्रारंभ हो जाती है- इसलिए जैन धर्म में शासन देवी-देवताओं का बड़ा महत्व है। लेकिन आज की स्थिति को देखकर लगता है कि एक दिन वह आयेगा जब दिगम्बर श्वेताम्बर की पहचान को लेकर खड़े होंगे तो दिगम्बरत्व की पहचान के लिए एक ही प्रमाण मिलेगा वह है जैन देवी-देवता क्योंकि दिगम्बर व श्वेताम्बरों के देवी-देवता अलग-अलग हैं। इसलिए देवी-देवताओं का अंकन ही स्वत्व का प्रमाण होगा।

हमारे मनीषी विद्वान के उक्त कथन के संबंध में नीचे विचार करते हैं :-

1 तीर्थंकर भगवान के गर्भ में आने के पूर्व से ही देवता नगर में रत्न वर्षा करते हैं और देवियाँ माता की सेवा करती हैं इसलिए उन देवी-देवताओं का इतना महत्व तो है कि वे देव रत्न वर्षा करते हैं और देवियाँ माता की सेवा करती हैं। भगवान की सेवा भक्ति तो अनेक देवी-देवता करते हैं, कुछ श्रद्धापूर्वक करते हैं और कुछ केवल नियोग से। इसी प्रकार मनुष्य भी अपनी सामर्थ्य के अनुसार भक्ति करते हैं। किन्तु यह बात ठीक से समझ में नहीं आती है कि जैन धर्म में उन देवी-देवताओं का बड़ा महत्व किस प्रकार है। मनुष्य की भक्ति तो जिन मुद्रा धारण कर स्वयं भगवान बन जाने की ऊँचाई तक पहुंच जाती है। फिर ऐसी जिनेन्द्र मुद्रा एवं संयम को धारण करने की योग्यता रखने वाले मनुष्यों के लिए उन असंयमी देवी-देवताओं को आत्मोन्नति के साधन रूप जैन धर्म में क्या महत्व हो सकता है? बल्कि चारित्र्य प्रधान जैन धर्म की दृष्टि से तो उन देवी-देवताओं के लिए मनुष्यों का बड़ा महत्व अवश्य है।

2 संभवतः हमारे आदरणीय विद्वान दिगम्बर, श्वेताम्बर प्रतिमाओं की पहचान के लिए उनमें अंकित देवी-देवताओं को मुख्य प्रमाण बताना चाह रहे हैं और इसलिए प्रतिमाओं पर देवी-देवताओं का अंकन आवश्यक घोषित कर रहे हैं। वस्तुतः दिगम्बर प्रतिमा की मुख्य पहचान तो वीतरागता, नग्नत्व, नासाग्रदृष्टि, अपरिग्रहत्व है। श्वेताम्बर प्रतिमाएं कंडोरा, कोपीन, आभूषण, संचेलत्व, चक्षु, पुष्प, चंदन आदि से पहचानी जाती है। इस प्रकार दिगम्बर प्रतिमा का श्वेताम्बर प्रतिमा से अलग पहचान कराने वाला मुख्य लक्षण वीतरागता व नग्नत्व है न कि देवी-देवताओं का अंकन।

वर्तमान में लगभग 68 प्रतिशत, यह प्रतिशत अधिक भी हो सकता है, दिगम्बर प्रतिमाएं बिना देवी-देवताओं

के अंकन के ही पाई जाती हैं। उनके दिगम्बर प्रतिमा होने के प्रमाण में हम कहां से किन देवी-देवताओं को उपस्थित करेंगे। उन सब प्रतिमाओं के दिगम्बर होने का सुस्पष्ट उद्घोष तो उनकी नग्नता और वीतरागता ही कर रही है। विशाल प्रकृति जगत की स्वाभाविक निपट नग्नता को जैनैन्द्र मुद्रा का रूप कहा गया है- “नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनैन्द्र मुद्रांकितम्”।

सुयोग्य विद्वान ने अपनी पीड़ा भरी चिंता व्यक्त करते हुए कहा है- “लेकिन आज की स्थिति को देखकर लगता है कि एक दिन वह आयेगा जब दिगम्बर, श्वेताम्बर की पहचान के लिए एक ही प्रमाण मिलेगा वह है जैन देवी-देवता” मान्य विद्वान का उक्त कथन दिगम्बर बंधुओं को आज की स्थिति में अपनी आराध्य दिगम्बर प्रतिमाओं के दिगम्बरत्व की सुरक्षा के प्रति विशेष सावधान होने का संदेश देता है। संभवतः हमारे सम्माननीय विद्वान महोदय का आशय यह है कि आज की स्थिति में दिगम्बर प्रतिमाओं को भी श्वेताम्बर प्रतिमाओं के समान पुष्पाम्बर, चंदनांबर बना देने में हम इतना आगे बढ़ गए हैं कि उनका विशुद्ध दिगम्बर स्वरूप सुरक्षित नहीं रह गया है और ऐसी दशा में दिगम्बर प्रतिमा की पहचान के लिए बाहर से सहज दिखाई देने वाला देवी-देवता वाला एक ही प्रमाण मिलेगा। हमें दुःख है कि हम अपने भगवान की प्रतिमा के स्वरूप को भगवान के स्वरूप के समान नहीं रख पा रहे हैं। हम अपने आचार्यों का उद्घोष “तत्किं भूषां वसन कुसुमैः किञ्च शस्त्रैरुदस्त्रैः” को भूल रहे हैं। क्या हमारे लिए यह लज्जा का विषय नहीं होगा कि हम अपने भगवान की प्रतिमा की पहचान में नग्नत्व तथा वीतरागता के स्थान पर सेवक देवी देवताओं के अंकन को प्रस्तुत करें?

मैं आदरणीय विद्वान के कथन का सम्मान करता हूँ कि जैन सिद्धांत में शासन देवी-देवताओं का महत्व केवल इतना ही है कि वे भी जिनेन्द्र भक्त हैं। किन्तु असंयमी होने के कारण वे हम श्रावकों के आराध्य कभी नहीं हो सकते हैं। दुर्भाग्यवश देवी-देवताओं की आकृतियों का अंकन भगवान के सेवक के रूप में भगवान की प्रतिमा के आजू-बाजू होने के बजाय अब उनकी स्वतंत्र प्रतिमाएं स्थापित होकर वे हमारी पूजा अराधना के मुख्य पात्र होते जा रहे हैं। हम विचार करें कि कहीं शासन देवी-देवताओं को महत्व देने के अतिलोभ के कारण हमारे वीतराग भगवान की वीतरागता और दिगम्बरत्व का महत्व हमारी आस्था से खिसक तो नहीं रहा है?

हम दिगम्बर हैं, हमारे भगवान दिगंबर हैं और हमारे गुरु दिगम्बर हैं। हमको हमारे दिगम्बर जैन होने का गौरव है। हमारा कर्तव्य है कि हम हमारे भगवान की प्रतिमा की मुख्य पहचान दिगम्बरत्व को किसी भी कीमत पर सुरक्षित बनाए रखें।

मदनगंज, किशनगढ़ (राज.)

समयसार-तात्पर्यवृत्ति : एक चिन्तन

डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

अध्यात्म की अजस्र धारा प्रवाहित करनेवाला श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत 'समयसार' आत्मतत्त्व प्ररूपक ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ है। इसका मंगलाचरण करते हुए ग्रंथकार ने 'वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुदकेवली भणिदं' प्रतिमा वाक्य लिखा है, जिसके आधार पर ग्रन्थानाम 'समयपाहुड' अवगत होता है। प्राकृत पाहुडं की संस्कृत छाया 'प्राभृतम्' है समय + प्राभृतम् दोनों शब्दों के संयोग से कृति संज्ञा 'समयप्राभृतम्' हुई। 'समयप्राभृतम्' संज्ञा की सार्थकता जानने के लिए समय और प्राभृत दोनों शब्दों की निरुक्तियाँ अपेक्षित हैं। 'समयते युगपत् जानातीति', इस निरुक्ति के अनुसार समय शब्द का अर्थ 'आत्मा' निष्पन्न होता है। अथवा 'सम एकीभावेन स्वगुण पर्यायान् गच्छति' इस निरुक्ति से समय शब्द का अर्थ समस्त पदार्थों में घटित होता है, क्योंकि पदार्थ अपने ही गुण पर्यायों को प्राप्त है। दूसरी व्युत्पत्ति "सम्यक् अयः बोधो यस्य सः भवति' समय 'आत्मा' अर्थात् समीचीन बोध होता है जिसका, वह समय है। समय शब्द का अर्थ आत्मा है। आत्मा ही जानने वाला है और इसका स्वभाव सर्व पदार्थों का सत्तात्मक बोध है। स्वयं कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने भी निर्मल आत्मा को समय कहा है। 'प्राभृत शब्द की व्युत्पत्ति "प्रकर्षेण आसमन्ताद् भूतामिति प्राभृतम्" अर्थात् प्रकर्षरूप से सभी ओर से भरा हुआ अथवा प्रकृष्टैराचार्यैर्विद्याद्विदाभृतं धारितं व्याख्यामानीतमिति वा प्राभृतम्" विद्याधनयुक्त महान् आचार्यों के द्वारा जो धारण किया गया है, वह है प्राभृत। प्राभृत का अर्थ शास्त्र है। दोनों शब्दों का समास करने पर अर्थ होगा आत्मा का शास्त्र है। आचार्य जयसेन ने 'प्राभृतं सारं सारः बद्धावस्था समसस्यात्मनः प्राभृतं समयप्राभृतम् अथवा समय एवं प्राभृतम् समय प्राभृतम्' लिखकर आत्मा की शुद्धावस्था अर्थ किया है।

इस ग्रन्थराज पर सर्वप्रथम आध्यात्मिक जागृति के अग्रदूत महाकवीश्वर विशिष्ट भाषाविद् असाधारण प्रतिभाशाली आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि ने दण्डान्वय प्रक्रिया को आश्रय लेकर आत्मख्याति नामक टीका लिखी। इसकी भाषा समास बहुल है। दार्शनिक प्रकरणों के कारण सामान्जनों के लिए दुरूह हो गयी है। इस टीका में 'समयसार' को नाटक का रूप दिया गया है। टीकाकार ने नाटकीय निर्देशों को पूरा-पूरा स्थान दिया है। यथा पीठिका परिच्छेद को पूर्वर्द्ध कहा गया है। कृति को नाटक के समान 9 अंकों (अधिकारों) में विभक्त किया गया है-

(1) जीवाजीव, (2) कर्त्ताकर्म (3) पुण्य (4) आस्रव (5) संवर (6) निर्जरा (7) बंध (8) मोक्ष (9) सर्वविशुद्ध ज्ञान।

नवम अंक के अंत में समाप्ति सूचक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं 'इति श्री अमृतचन्द्रसूरि विरचितायां समससारव्याख्यात्मख्यातौ सर्वविशुद्धज्ञानप्ररूपको नवमोद्धः। नवम अंक के बाद नयों का सामञ्ज्य उपस्थित करने के लिए स्याद्वादाधिकार तथा उपायोपेयभावाधिकार नामक दो स्वतंत्र परिशिष्ट जोड़ दिये जाते हैं। यह दर्शाने का टीकाकार का प्रयास है कि जीव अजीव आस्रव आदि नाटक के अभिनेताओं की भूमिका निभाये हुए हैं। द्वितीय अंक के पश्चात् अन्य अंकों के अन्त में आरम्भ में नाटकीय शब्द, जैसे निष्क्रान्तः प्रविशति आदि का प्रयोग किया गया है। साथ में यत्र-तत्र संस्कृत नाटकों में प्राप्त होने वाले शब्दों का भी सामान्य रूपेण उपयोग है।

आचार्यवर्य अमृतचन्द्रसूरि के समयसार की 415 गाथाओं पर टीका लिखी है। टीका के मध्य गाथाओं के सारभूत विषयों को 278 कलश काव्यों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कलश काव्य अत्यन्त रोचक एवं भावपूर्ण हैं। कलश काव्यों ने ही टीका को महत्त्वपूर्ण बना दिया है और स्वाध्यायाजनों की अभिरुचि जगायी है। आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि का सम्यक् रूप से अनुगमन करते हुए विलक्षण प्रतिभावान् सिद्धान्तविद् आचार्यवर्य श्री जयसेन स्वामी ने अत्यन्त सरल और सुबोध संस्कृत में सर्वजन संवेद्य तात्पर्यवृत्ति टीका लिख। यह टीका श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य के भावों के उद्घाटन में पूर्ण सहायक है क्योंकि जयसेनाचार्या आत्मा के शुद्ध स्वभाव पर मनन करते हुए चले हैं, कहीं-कहीं पुद्गल से भिन्नता दिखाते हुए और कहीं-कहीं कर्म, कार्मास्रव, कर्मबंध आदि स्वभाव का विवेचन करते हुए और कहीं-कहीं संवर और निर्जरा का उपाय निदर्शन से टीका ने अध्यात्म विद्या के अध्येताओं को विशिष्ट रूप से प्रभावित किया है।

टीकाकार के रूप में आचार्य श्री जयसेन को जो प्रसिद्धि मिली है, वह अद्यावधि किसी ने भी प्राप्त नहीं की क्योंकि टीका लिखने की इनकी अपनी विशिष्ट विधि है। इन्होंने पद-खण्डनाविधि को अपनाया है। वस्तुतः टीकाकरण की यही विधि श्रेष्ठ है। इससे मूल की सुरक्षा होती है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के मूल शब्दों की संरक्षा में इनकी प्राकृत शब्दानुसारी टीका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने प्राकृत विलक्षणताओं पर पाठकों का विशेष ध्यान आकृष्ट किया है। टीका में सुरक्षित मूल ग्रन्थ पाठ विविध भाँति से मूल्यवान् है और दीर्घतर पुनरीक्षण के लिये उनकी कर्तव्य निष्ठा वस्तुतः श्रेयस्कर है।

आचार्य श्री जयसेन स्वामी ने 439 गाथाओं पर तात्पर्यवृत्ति टीका लिखी है। समस्त गाथाओं को कुन्दकुन्द स्वामी रचित ही

मानकर टीका लिखी है। समयसर को दस अधिकारी में विभक्त किया है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने जीवाजीवाधिकार को एक ही माना है, किन्तु आचार्य जयसेन ने इसको दो अधिकारों में विभक्त कर टीका की है जीवाधिकार में 43 गाथाएँ और आजीवाधिकार में 39 गाथाएँ हैं। इस प्रकार एक अधिकार को दो भागों में विभक्त करने से आचार्य अमृतचन्द्रसूरि की अपेक्षा इन्होंने यह अध्याय बढ़ा दिया। अंत में स्याद्वाद अधिकार रूप से ग्रन्थ समाप्ति के अनन्तर जोड़ा है आचार्य जयसेन की विशेषता है कि प्रत्येक अधिकार या उप परिच्छेद या उप परिच्छेद के प्रारंभ में इन्होंने इस अधिकार का विश्लेषण विषयवस्तुओं के अनुसार गाथाओं की संख्या को भी उपस्थित कर दिया। यथा “प्रथमतस्तावदष्टाविंशति गाथा पर्यन्त जीवाधिकारः कथ्यते।” अधिकार के अन्त में “इति समयसारव्याख्यायां शुद्धात्मानुभूतिलक्षणाया तात्पर्यवृत्तो स्थलसक्केनजोपरसदिअप्पाणुमित्यादि, सप्तविंशतिगाथाः तदनन्तरगुपसंहार सूत्रकेमिति ससमुदायनोष्टाविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकारः समाप्तः।”

प्रत्येक गाथा का परिचय पीठिका के द्वारा दिया गया है। इनके द्वारा उपस्थापित पाठिका सामान्य रूप से गाथा में वर्णित विषय को स्फुट करने में समर्थ होती है। इनकी प्रत्येक गाथा को शब्दशः स्पष्ट करने की शैली महत्त्वपूर्ण है। आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि ने गाथा को शब्दशः स्पष्टीकरण की शैली को नहीं अपनाया इसलिये उनके द्वारा लिखित आत्मख्याति सर्वसामान्य को विषयबोध का माध्यम नहीं बन सकी आचार्य जयसेन का पूर्ण प्रयास आचार्य अमृतचन्द्रसूरि द्वारा प्रस्तुत विषय की संगति रखने में रहा है। तथाहि (उदाहरणार्थ) पद के माध्यम से आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने मन्तव्यों को समन्वित करते हुए गाथा की टीका पूर्ण करते हैं। साथ में कभी-कभी अत्राह शिष्यः, परिहारम् आह आदि जैसे शब्दों के साथ नवीन विवेचनों को जोड़ देते हैं।

आचार्य जयसेन स्वामी ने अनेक स्थलों पर आचार्य अमृतचन्द्रसूरि का सन्निकट रूप से अनुगमन भी किया है। और सुबोध रूप से अधिक बार उनका निर्देश भी किया है। जैसे आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने “सुद्धो सुद्धोदेसो णायव्वो” इत्यादि गाथा की टीका में लिखा है “ये खलु पर्यन्त पाकोत्तीर्ण जात्यकार्तस्वरस्थानीयं परमं भावमनुभवन्ति, तेषां प्रथमद्वितीयद्यनेकपाकपरम्परापचमानकार्तस्वरानुभवस्थानीयपरमतापानुभवनशून्यरूत्याच्छुद्धद्रव्यादेशतया समुद्योतितास्खलितैकस्वभावैकभावः शुद्धिनय एवोपरितनैकरप्रतिवर्णिका स्थानीयत्वापरिज्ञायमानः प्रयोजनवान्।” अर्थात् जो पुरुष अन्तिम पाक से उतरे हुए शुद्ध सोने के समान वस्तु के उत्कृष्ट असाधारण भाव का अनुभव करते हैं, उनको प्रथम द्वितीय आदि अनेक पाकों की परम्परा से पच्यमान (पकाये जाते हुए) अशुद्ध स्वर्ण के समान अपरमभाव का अर्थात् अनुत्कृष्ट मध्यम भाव का अनुभव नहीं होता। इस कारण शुद्ध द्रव्य का ही कहने वाला होने से जिसने अचलित अखण्ड एक

स्वभावरूप एक भाव प्रकट किया है, ऐसा शुद्धिनय ही उपरितन एक शुद्ध सुवर्णावस्था के समान जाना हुआ प्रयोजनवान् है, परन्तु जो पुरुष प्रथम द्वितीय आदि अनेक पाकों की परम्परा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण के समान वस्तु के अनुत्कृष्ट मध्यम भाव का अनुभव करते हैं उनको अनितम पाक से उतरे हुए शुद्ध सुवर्ण के समान वस्तु के उत्कृष्ट भाव का अनुभव न होने से उस काल में जाना हुआ व्यवहारनय ही प्रयोजवान् है।

उक्त कथन के परमशुद्धभाव का अनुभव क्षीणमोही मुनि के घटित होता है। उससे पूर्व सभी अशुद्धभाव में ही हैं। श्रेणी में बुद्धिपूर्वक राग का भाव होने से शुद्धोपयोगी मुनि के भी कथाञ्चित परमभाव का अनुभव कहा जा सकता परन्तु छठे सातवें गुणस्थान तक तो शुभोपयोग ही है अतः यहाँ तक तो परमभाव का अनुभव है ही नहीं। आचार्य जयसेन स्वामी ने इसे सरल रूप से प्रस्तुत करते हुए कहा है कि शुद्ध निश्चयनय, शुद्धता को प्राप्त हुए आत्मदर्शियों के द्वारा जानने अनुभव करने योग्य है क्योंकि वह सोलहवानी स्वर्ण के समान अभेदरत्नत्रयस्वरूप समाधिकाल में प्रयोजनवान् है। समाधि रहित अशुद्धावस्था वालों को व्यवहारनय प्रयोजनवान् है जो लोग अशुद्धरूप शुभोपयोग में जो कि असंयतसम्यग्दृष्टि अथवा श्रावक की अपेक्षा तो सरागसम्यग्दृष्टि लक्ष्य वाला है और प्रमत्त-अप्रमत्तसंयत की अपेक्षा भेदरत्नत्रय लक्षण वाला है। अतः इनके व्यवहार प्रयोजनीयभूत है।

आगे 179, 180 गाथाओं की टीका में आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि ने कहा है कि जब यह ज्ञानी जीव शुद्धिनय से च्युत हो जाता है तब उसके पूर्व बद्ध प्रत्यय पुद्गल कर्मों से बंध करा देते हैं। इनकी टीका करते हुए आचार्य जयसेन ने कहा है कि जब तक ज्ञानी जीव की भी परमसमाधि का अनुष्ठान नहीं हो पाता है, तब तक वह भी शुद्धात्मा के स्वरूप को देखने में जानने में और वहाँ स्थिर रहने में असमर्थ होता है।

समयसार तात्पर्यवृत्ति में मुख्य रूप से ज्ञानी सम्यग्दृष्टि सम्यग्दृष्टि सप्तम आदि अप्रमत्त गुणस्थानों में माना है किन्तु-

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणमदि।

अण्णत्तं णणगुणो तेण दु सो बंधगो भण्णदो ॥

समयसार 179

आत्मा का ज्ञान गुण जब तक जघन्य अवस्था में रहता है अर्थात् स्पष्टतया यथाख्यात दहन को प्राप्त नहीं होता तब तकग अन्तर्मुहूर्त के पश्चात् अन्यपने (निर्विकल्पता से सविकल्पता) को प्राप्त होता रहता है, इसलिये उस समय वह नवीन बन्ध करने वाला भी होता है।

इस गाथा की टीका में आचार्य जयसेन स्वामी ने स्पष्ट किया है कि मिथ्यादृष्टि के ज्ञान गुण से काललब्धि के द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त होने पर यह ज्ञान मिथ्यापने को त्याग कर सम्यग्ज्ञापने को प्राप्त कर लेता है, इसलिये वह ज्ञानगुण अथवा ज्ञानगुण के स्वरूप में परिणत जीव अबन्धक कहा जाता है इस कथन के आधार पर

पण्डित जी जगमोहन लाल जी ने अविरतसमयगृष्टि को भी ज्ञानी और अबन्धक स्वीकार किया है। समयसार की गाथाओं में जहाँ भी समयगृष्टि अथवा ज्ञानी पद आता है वहाँ तात्पर्यवृत्ति में तो वीतरागसमयगृष्टि को स्वीकार किया गया है प्रायः आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि ने भी वीतरागसमयगृष्टि अर्थ ग्रहण किया है जैसे - 'णत्थि दु आसव बन्धो सम्मादिट्टिस्स आसवणिरोहो।' अर्थात् समयगृष्टि के आस्रवत बंध नहीं हैं, प्रत्युत आस्रव का निरोध है। आस्रव का निरोध राग द्वेष मोह से रहित जीव को ही संभव है अतः दोनों ही आचार्यों को वस्तुतः समयसार में वीतराग समयगृष्टि इष्ट है।

उक्त 179 नं. की गाथा का विशेषार्थ लिखकर आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने यथार्थता को उपस्थित किया है वे लिखते हैं - "ज्ञान शब्द का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है एक तो यथा वस्थितमर्थं जानातीति ज्ञानम्, दूसरा आत्मानं जानाति अनुभवतीति ज्ञानम्। द्वितीय अर्थ के अनुसार तो समाधिकाल में ज्ञान जब तक अनुभव करता रहता है, तब तक वह ज्ञान कहा जा सकता है। ध्यान समाधि से जहाँ च्युत हुआ कि वह अज्ञान कोटि में आ जाता है और बन्ध भी करने लग जाता है। तात्पर्यवृत्ति और आत्मख्याति दोनों ही टीकाओं के अनुसार चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव का ज्ञान भी इस ज्ञान शब्द से लिया जा सकता है क्योंकि वह भी जीवादि नव पदार्थों का यथार्थज्ञान रखता है किन्तु इस अर्थ के अनुसार गाथा का जो अर्थ यहाँ खींच लिया गया है, वह कुछ खींच कर लिया हुआ सा प्रतीत होता है जिसका समर्थन आत्मख्याति और तात्पर्यवृत्ति के अन्य स्थानों से नहीं होता है। स्वयं जयसेनाचार्य ने स्थान-स्थान पर यही लिखकर बताया है कि इस ग्रंथ में जो वर्णन है, वह गृहस्थ समयगृष्टि को लेकर नहीं किन्तु वीतराग (त्यागी) समयगृष्टि को लेकर किया है।

इस प्रकरण में जयसेनाचार्य के शब्दों को देखा जा सकता है - 'अत्र ग्रन्थे वस्तुवृत्त्या वीतरागसमयगृष्टिग्रहणं यस्तु चतुर्थगुण-स्थानवर्ती सरागसमयगृष्टिस्तस्य गौणवृत्त्या ग्रहणम्' अर्थात् इस ग्रन्थ में वास्तव में वीतरागसमयगृष्टि का ग्रहण है, चतुर्थगुणस्थानवर्ती सरागसमयगृष्टि का ग्रहण तो गौण रूप से तथा मिथ्यागृष्टि की अपेक्षा अविरतसमयगृष्टि के भी अनन्तानुबन्धी कपाय चतुष्क और मिथ्यात्व जनित रागादि नहीं है अतः उतने अंश में उसके भी निर्जरा है।

आगे कहा है - अत्र तु ग्रन्थे पञ्चमगुणस्थानादुपरितनपगुण-स्थानवर्तिनां वीतरागसमयगृष्टिनां मुख्यवृत्त्या ग्रहणं सरा-गसमयगृष्टिनां गौणवृत्त्येति व्याख्यानं समयगृष्टिव्याख्यानकाले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यम्

इस ग्रन्थ में पञ्चम गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थान वाले वीतरागसमयगृष्टियों का ही मुख्य रूप से ग्रहण है, सरागसमयगृष्टियों का तो गौण रूप से ग्रहण है समयगृष्टि के व्याख्यान के समय सर्वत्र ऐसा ही तात्पर्य समझना चाहिए।

उक्त कथनों के आधार पर ही डॉ. ए.एन. उपाध्ये जैसे मनीषी ने यहाँ तक लिखा है "समयसार को गृहस्थां द्वारा पढ़ा जाना तक वर्जित है, क्योंकि ग्रन्थ में भेदविज्ञान जैसे आध्यात्मिक प्रकरण मुख्यतः चर्चित किये गये हैं, विवेचन शुद्ध निश्चयनय से किया गया है और व्यवहारनय को मात्र संभावनाओं के सुधार हेतु लिखा है। अंततः निश्चयनय में दिये गये आध्यात्मिक कथन उन गृहस्थां को सामाजिक और नैतिक रूप से हानिकारक हो सकते हैं, जो आध्यात्मिक अनुशासन से प्रायः पूर्णतः शून्य हैं।"

आचार्य जयसेन स्वामी ने समयसार गाथाओं में वर्णित समयगृष्टि को वीतरागचारित्र वाला मुनि ही स्वीकार किया है। तात्पर्यवृत्ति में गुणस्थान विवक्षा की प्रधानता है किन्तु आचार्य अमृतचन्द्रसूरि की कहीं भी उपेक्षा न कर उन्हीं का अनुगमन करते हुए प्रायः जयसेनाचार्य लिखते हैं। समयसार गाथा संख्या 306, 307 की टीका में श्री अमृतचन्द्रसूरि ने अप्रतिक्रमण आदि को अमृतकुम्भ कहा है, सो तृतीय भूमि में अर्थात् शुद्धोपयोग में कहा है - 'तृतीयभूमिस्तु स्वयं शुद्धात्मतिसिद्धिरूपत्वेन' अर्थात् अप्रतिक्रमण प्रतिक्रमण से परे जो अप्रतिक्रमणरूप तृतीय भूमि है, वह स्वयं शुद्धात्मा की सिद्धिरूप है।

इसी प्रकरण में जयसेनाचार्य का कथन भी दृष्टव्य है 'सरागचारित्र लक्षण शुभोपयोग की अपेक्षा से ये ही निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रतिसरण आदि कहलायेंगे क्योंकि प्रतिक्रमण आदि शुभोपयोग हैं। ये सब सविकल्प अवस्था में अमृतकुम्भ हैं किन्तु परमोपेक्षासंयमरूप निर्विकल्प अवस्था में विषकुम्भ हैं। वहाँ तो अप्रतिक्रमण अर्थात् निश्चय प्रतिक्रमण आदि ही अमृतकुम्भ हैं।'

जयसेनाचार्य अमृतचन्द्राचार्य का अनुसरण प्रायः अवश्य करते हैं किन्तु जहाँ भी आत्मख्याति में तत्त्व का सामान्य प्रतिपादन हुआ है, वहाँ उसका विशेष स्पष्टीकरण आचार्य जयसेन ने अवश्य किया है। पात्र की दृष्टि से भी कथन करके टीका का प्रत्येक अध्येता की ग्राह्या बना दी है।

तात्पर्यवृत्ति में जीव के भावों की विशिष्टता का सम्यक् प्रकरण चित्रण किया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अध्यवसान भाव रहित मुनि को ही शुभ अशुभ कर्मों के बंध से बचाता है। इसे जयसेन स्वामी ने किञ्च विस्तरः लिखकर स्पष्ट किया है - 'जिस समय इस जीव को शुद्धात्मा का समीचीन रूप श्रद्धान, ज्ञान और अनुष्ठान स्वरूप निश्चय रत्नत्रय ही है लक्षण जिसका ऐसा भेदविज्ञान नहीं होता है, तो उस समय जीव 'मैं इन जीवों को मारता हूँ इत्यादि रूप से हिंसा के अध्यवसान को 'मैं नारक हूँ इत्यादि कर्मोदय के अध्यवसान को 'यह धर्मास्तिकाय हैं' इत्यादिरूप से ज्ञेय पदार्थ के अध्यवसान को जानता है। तब उस समय वह उस हिंसा अध्यवसानरूप विकल्प के साथ अपने आपको अभेदरूप जानता हुआ वैसे ही श्रद्धान करता है, जानता है और वैसे ही आचरण करता है इसलिए मिथ्यागृष्टि होता है और मिथ्याचारित्रो

भी होता है। इसीलिए उसके कर्मबन्ध होता है तो वह सम्यग्दृष्टि होता है, सम्यग्ज्ञानी होता है और सम्यक् चरित्रवान् होता है, उस समय कर्म का बंध नहीं होता है।

आचार्य कुन्दकुन्द के कथन 'जब तक यह छद्ममस्थ जीव बाह्य वस्तुओं के संबन्ध में संकल्प विकल्प करता है, तब तक उसके हृदय में आत्मा के विषय का ज्ञान नहीं होता है अतः तभी तक वह जीव शुभ और अशुभव जाति के कर्म भी करता है।'

अनन्तज्ञान सम्पन्न आत्मा को शुभाशुभ प्रवृत्ति वाला नहीं जान सकता है। जो आत्मोपलब्धि वाला है, वही सम्यग्दृष्टि है आचार्य ज्ञानसागर पात्र विवक्षा से सम्यग्दर्शन का कितना स्पष्ट वर्णन करते हैं 'आचार्य श्री ने यहाँ आत्मोपलब्धि की बात कही है' वह आत्मोपलब्धि तीन प्रकार की है-

- (1) आगमिक आत्मोपलब्धि (2) मानसिक आत्मोपलब्धि
- (3) केवलात्मोपलब्धि।

गुरु की वाणी में आत्मा का स्वरूप सुनकर उस पर विश्वास ले आना यह आगमिक आत्मोपलब्धि है। आत्मा के शुद्ध-स्वरूप को मन से स्वीकार करना अर्थात् मन को तदनुकूल परिणाम लेना यह मानसिक आत्मोपलब्धि है। (3) केवल ज्ञान हो जाने पर प्रत्यक्ष रूप से आत्मा की प्राप्ति यह केवलात्मोपलब्धि है। उनमें से केवलात्मोपलब्धि की बात तो अपूर्व है, वह तो परिणाम स्वरूप एवं ध्येय रूप है ही, परन्तु यहाँ शेष केवलात्मोपलब्धियों में से मानसिक आत्मोपलब्धि की बात है, जहाँ यह श्रद्धा के साथ आचरण भी तदनुकूल होता है अर्थात् जैसे करनी वैसी भरती की बात है। जहाँ पर श्रद्धा के साथ साथ मानसिक आत्मोपलब्धि के समय स्वयं में भी हर्ष-विषादादि विकारभावों का अभाव होता है, अतः वहाँ शुभ या अशुभ किसी प्रकार के नूतन कर्मबंध का सद्भाव नहीं होता। अतः व्रती महर्षियों को स्वीकार्य है तथा उसी का इस अध्याय प्रकरण में संग्रहण एवं उसकी मानसिक आत्मोपलब्धि वाले को सम्यग्दृष्टि ज्ञानी निर्बन्ध आदि रूप से कहा गया है। जहाँ आगमिक आत्मोपलब्धि की बात है, वहाँ पर शुद्धात्मा के विषय का श्रद्धानी होता है किन्तु आचरण तदनुकूल न होकर उससे उलटा होता है अर्थात् उसे यह विश्वास तो है कि आत्मा का स्वरूप हर्ष-विषादादि करना नहीं हैं किन्तु स्वयं हर्ष-विषादि को लिए हुए रहता है और करता रहता है। इस प्रकार 'कथनी और करनी' वाली कहावत को चरितार्थ करने वाला होने से उसे इस अध्यात्म की शैली के ग्रन्थ में सम्यग्दृष्टि आदि न कहकर मिथ्यादृष्टि आदि न कहकर मिथ्यादृष्टि कहा गया है। आगमिक लोग शुद्धात्मा को श्रद्धामात्र से ही सम्यग्दृष्टिपना मानते हैं क्योंकि उनकी विचारधारा यह है कि इसके शुद्धात्मा होने रूप आचरण भले ही आज न सही किन्तु शुद्धात्मा की श्रद्धा तो इसके भी जगी है अतः संग्रहकर्ता के रूप में यह भी सम्यग्दृष्टि ही है।

आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज ने शंकास्पद स्थलों को अत्यन्त सरल रूप से स्पष्ट किया है तथा अव्रतरूप प्रवृत्ति करने से

पाप बंध और व्रतरूप सदवस्था में प्रवृत्ति करने से पुण्यबंध का 275 एवं 276 गाथाओं के भाव का स्पष्टीकरण-प्रश्नोत्तर के रूप में किया है।

शंका- पहले तो आचार्य श्री बतला आये हैं कि मात्र सम्यग्दर्शन होने पर ही किसी प्रकार का बंध नहीं होता और यहाँ कहा जा रहा है कि महाव्रत अवस्था में पुण्यबंध होता है, सो कुछ समझ में नहीं आया।

समाधान- हे भाई, जहाँ आचार्यश्री ने सम्यग्दृष्टि का निर्बन्ध कहा है, वहाँ केवल वीतराग सम्यग्दृष्टि को लेकर कहा है जैसा कि 'चत्तारि विपावे' इत्यादि गाथा से स्पष्ट है, शेष अव्रतसम्यग्दृष्टि आदि के बंध उनके रागानुसार होता ही है क्योंकि राग ही बन्ध का कारण है।

शंका- आपने कहा सो ठीक परन्तु महाव्रतों से भी पुण्य बंध होता है यह कैसे? क्योंकि फिर जो बन्ध नहीं करना चाहता, वह व्रत छोड़ दें?

उत्तर- हे भाई! महाव्रतों के दो रूप होते हैं-(1) सत्यप्रवृत्तिरूप (2) निवृत्तिरूप जैसे कि हिंसा करना या किसी को भी कष्ट देना यह पाप है, अशुभ बन्ध का कारण है, किन्तु हिंसा नहीं करना अर्थात् सभी के सुखी होने की भावना करना यह सत्प्रवृत्तिरूप महाव्रत है। यह पुण्यबंध करने वाला है और इसी का सम्पन्न रूप किसी से भी डरने डराने रूप भयसंज्ञा से रहित स्वयं निर्णय होना यह पुण्य और पाप इन दोनों से भी दूर रहने वाला है। इसी प्रकार झूठ बोलना पाप, सत्य बोलना पुण्य किन्तु सर्वथा नहीं बोलना अर्थात् मौन रहना सो पुण्य और पाप इन दोनों से भी रहित। किसी की भी बिना दी हुई वस्तु भोजन आदि में लेना सो चोरी-पाप और उसका त्याग किन्तु श्रावक के द्वारा भक्ति पूर्वक उचित रूप से दिया शुद्ध आहार ग्रण करना सो पुण्य और आहार संज्ञा से रहित होना सो पुण्य व पाप इन दोनों से भी रहित। व्यभिचार तो पाप तथा स्त्रीत्यागरूप ब्रह्मचर्य सो पुण्य किन्तु मैथुन संज्ञा से रहित होना यह पुण्य और पाप से रहित। इसी प्रकार परिग्रह पाप, परिग्रह त्याग पुण्य किन्तु परिग्रह संज्ञा का नहीं होना सो शुद्ध रूप इस प्रकार महाव्रतों का पूर्व प्रारम्भात्मरूप शुभ किन्तु उन्हीं का ही अपर-रूप जो कि पूर्णतया उदासीनता मय एवं चारों प्रकार की संज्ञाओं से भी रहित होता है, वह शुद्ध अतः बन्ध कर होता है।

उक्त अशुभ-शुभ का का विशेषार्थ के माध्यम से आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने स्पष्टीकरण किया। इतना सरल ढंग समझाने का बिरलजनों का ही पाया जाता है। उसी प्रकार के विशेषार्थों के द्वारा आचार्य श्री ने अध्यात्म के गूढ से गूढ रहस्यों को उद्घाटित किया है, जिससे समयसार तात्पर्यवृत्ति प्रत्येक अध्यात्मक जिज्ञासु के लिये अति उपयोगी हो गयी है।

सम्प्रति कुछ कदाग्रही जन गृहस्थावस्था में वीतराग-सम्यग्दृष्टि बने हुए हैं उन लोगों की भ्रान्त धारणाओं के उन्मूलन

के लिए आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज द्वारा लिखित विशेषार्थ पूर्ण समर्थ हैं क्योंकि आचार्यश्री ने तात्पर्यवृत्ति को पूर्ण आत्सात करके ही विशेषार्थों के माध्यम से विषयों का स्पष्टीकरण किया है।

आस्रवाधिकार (184-185) में आचार्य श्री जयसेन ने वीतरागसम्यग्दृष्टि के अधिकारी का विशेष स्पष्टीकरण किया है। तात्पर्यवृत्ति में जगह जगह पर परिलक्षित होता है। क्वचित् कदाचित् स्थानों पर तात्पर्यवृत्ति में गद्य की कृत्रिमता भी देखने को मिलती है फिर भी अभिव्यक्ति की धारा अति प्रबल है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि तो कवि हृदय हैं। इनके पद्य भाग की अपेक्षा तात्पर्यवृत्ति का गद्य अत्यन्त सरल सर्वजन बोध्य है। वस्तुतः जयसेन स्वामी ने गद्य में विशिष्टता प्राप्त की है। इन्होंने दार्शनिक विषय वस्तु के उपस्थान के साथ-साथ शाब्दिक स्पष्टीकरण पर विशेष ध्यान दिया है। तात्पर्यवृत्ति ही वस्तुतः कुन्दकुन्द स्वामी के अभिप्रायों को स्फुट करने में सक्षम है क्योंकि जयसेन स्वामी की भाषा सरल और सहानुभूतिपूर्ण है और उनका प्रयास रहा है कि विषय का पूर्ण स्पष्टीकरण हो जिससे सामान्य बुद्धिशील भी विषय का परिज्ञान प्राप्त कर सके। सरलतम संस्कृत में लिखते हुए प्रयोजनभूत अर्थ का उद्घाटित करना उनकी प्रतिभा का वैशिष्ट्य है। उन्होंने व्याकरण सम्बन्धी कठोरता की उपेक्षा की है। तात्पर्यवृत्ति में उद्धरणों की भी बहुलता है। उद्धरणों से प्रमाणिकता पुष्ट होती है। प्रसंग प्राप्त उद्धरण प्रस्तुति आचार्य जयसेन की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की परिचायिका है।

जयसेनाचार्य की तात्पर्यवृत्ति की महत्त्वपूर्ण स्वतंत्र भेदों की सुरक्षित रखना है। आचार्य कुन्दकुन्द के शब्दों की सुरक्षा तात्पर्यवृत्ति के माध्यम से ही है। आचार्य कुन्दकुन्द का परिचय कराने वाले आचार्य जयसेन ही हैं। इनकी आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के प्रति अगाध भक्ति अनुकरणीय है। आचार्य जयसेन के पूर्व एक सहस्र वर्ष आचार्य कुन्दकुन्द के नाम से अपरिचित रहने वाले अध्यात्म जगत् के ऊपर जयसेनाचार्य का महान् उपकार है

कि उन्होंने अध्यात्मक विद्या के अधिष्ठाता आचार्य श्री कुन्दकुन्द का परिचय कराया। अध्यात्मक विद्या रसिक समाज को समयसार की तात्पर्यवृत्ति विषय वस्तु को समझने में अत्यधिक सहायक हैं इसलिए प्रत्येक अध्यात्मविद्या एवं दर्शनशास्त्र के अध्येता को इसका अध्ययन अति आवश्यक है।

आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज ने रूपान्तर और विशेषार्थ के द्वारा मण्डित कर श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य की सर्वोच्च कृति समयसार पर आचार्य श्री जयसेन लिखित तात्पर्यवृत्ति को जन-जन के लिए ग्राह्य बना दिया है। समयसार तात्पर्यवृत्ति के बिना समयसार के रहस्य को पाना अशक्य ही है। अतः प्रत्येक आत्मतत्त्व जिज्ञासु को आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज द्वारा लिखित विशेषार्थ सहित समयसार तात्पर्यवृत्ति को अपने स्वाध्याय का विषय बनाना अनिवार्य है।

1. 'समयो खलु णिम्लो अप्पा' रयणसार गा. 153
2. जयधवल पु. पृ. 357
3. समयसार पृ. 3 (आचार्य श्री ज्ञानसागर कृत टीका)
4. समयसार पृ. 16 तात्पर्यवृत्ति टीका (आ. श्री ज्ञानसागर कृत प्रथमावृत्ति)
5. वही पृष्ठ 39
6. समयसार गा. 12 आचार्य अमृतचन्द्र कृत टीका।
7. अध्यात्मक अमृतकलश प्र. पृ.
8. समयसार तात्पर्यवृत्ति निर्जरा अधिकार पृ. 196 (आ. श्री ज्ञानसागर कृत टीका प्रथमावृत्ति)
9. प्रवचनसार एक अध्ययन (हिन्दी रूपान्तर) पृ. 196
10. उद्धृत समयसार पूर्वार्द्ध आर्यिका ज्ञानमती-समयसार एक अध्ययन पृ. 8
11. समयसार पृष्ठ 288 (आ. श्री ज्ञानसागर कृत टीका प्रथमावृत्ति)

उपाचार्य (रीडर) संस्कृत विभाग,
दिगम्बर जैन कॉलेज, बड़ौत

आयुर्वृद्धिक्षयोत्कर्ष हेतुं कालस्य निर्गमम्।

वाञ्छतां धनिनामिष्टं जीवितात्सुतरां धनम्॥

भावार्थ- काल का बीतना, आयुक्षय तथा धनवृद्धि के कारण हैं। लोभी व्यक्ति चाहता है कि जितना काल बीतेगा उतनी ही ब्याज की वृद्धि होगी किन्तु वह यह नहीं समझता है कि उसका जीवन घट जायेगा, क्योंकि उसे जीवन से ज्यादा धन इष्ट है।

न काकतालीयमिदं कथंचित्कलेशक्षयान्मानुषजन्म लब्ध्वा।

युक्तः प्रमादः स्वहिते विधातुः, संसारवृत्तांतविदा नरेण॥

भावार्थ- यह मानव बड़े क्लेश भोगने के बाद कर्मोदय के मन्द होने पर किसी तरह काक तालीय न्याय से प्राप्त हुआ है। अतः संसार के प्रकरण को जानने वाले मनुष्य को अपने हित में आलस नहीं करना चाहिये।

मातृत्व की सच्ची संरक्षिका : अंजना

डॉ. नीलम जैन

अंजना का चरित्र पूर्वोपार्जित दुष्कर्म के फलों को भोगती हुई, मुसीबत झेलती हुई एक नारी का करूणामय चित्र है। उन्हें समझने के लिए अन्तरात्मा की गहराइयों में झाँकना होगा। विवाह की प्रथम रात को ही अककारण परति द्वारा श्वसुरगृह से निष्कासित निर्जन वन की शून्य कन्दराओं में भयावह सन्नाटों की कंपकंपाहट को आत्मसात करना होगा। बिना आँसुओं की नदी पार किए, दासी संग वन-वन भटकती राजकन्या को नहीं जाना जा सकता।

अनुपत रूप लावण्य की पुञ्ज अंजना को यौवनपती देख पिता महेन्द्र एवं माता हृदय वेगा के मन में उसके विवाह की चिन्ता उत्पन्न होना स्वाभाविक थी। मंत्रियों से परामर्श कर पिता महेन्द्र ने आदित्यपुर के राजा प्रह्लाद और रानी केतुमती से उत्पन्न पवनञ्जय कुमार को कन्या देने का निर्णय लिया। पश्चात फाल्गुन मास का अष्टाहिका पर्व मनाने हेतु राजा सपरिवार कैलाश पर्वत पर गये। वहाँ राजा पहलाद से मिलाप हुआ, चर्चा-वार्ता हुई, तथा तीन दिन पश्चात ही अंजना पवनञ्जय का विवाह होना निश्चित हो गया। रागोद्रेक में अंजना को देखे बिना पवनञ्जय को तीन दिन की अवधि एकाकी बिताना भी असह्य हो रहा था, अतः वे उसी रात्रि मित्र प्रहसित को साथ ले अंजना को देखते हेतु उसके महल की छत पर जा पहुँचे, तथा झरोखे में से उसका रूपान करने लगे। उसी समय अंजना के तीव्र पापोदय से प्रेरित होते हुए भी अंजना की सखी ने उपहास में अंजना के भावी पति पवनञ्जय की कटु आलोचना की। जिसे सुनकर कुमार कुद्ध हो उठे, तथा उन्होंने वहाँ से प्रस्थान करने का निश्चय किया। यह समाचार सुनकर राजा प्रह्लाद और राजा महेन्द्र, पवनञ्जय के समीप आये तथा उन्हें बहुत समझाया। पिता और श्वसुर के गौरव को भंग करने में असमर्थ कुमार ने विवाह करना तो स्वीकार कर लिया किन्तु विवाह के तुरन्त बाद ही सुकुमारी अंजना का परित्याग कर दिया।

इस प्रकार शोकसंतप्त अंजना जिस समय दुख समुद्र में उन्मज्जन निमज्जन कर रही थी, तभी उसे ये शब्द कर्णगोचर होते हैं। राजा वरूण से रावण का युद्ध छिड़ गया है, अतः उसकी वेदना नदी में एकाएक बाढ़ आ गई। पति दर्शन की आशा से प्रेरित वह कृशांगी प्रमुख द्वार पर आ पहुँची। महल से निकलते ही कुमार से सहसा अंजना पर पड़ती हुई अपनी दृष्टि को शीघ्र संकुचित कर लिया तथा कहा कि हे दुख लोकने! तू इस स्थान से शीघ्र हट जा। तुझे देखने के लिए मैं असमर्थ नहीं हूँ। “आहो!” कुमार की तिरस्कार पूर्ण कुट वाणी सुनकर अंजना मूर्च्छित हो गई।

कुमार मानसरोवर तट पर पहुँचे। वहाँ एक रात अपने पति

चकवे से विरक्त एक चकवी की शोकाकुल विरह दशा का चिन्तन करने लगे कि हा! एक निर्दोष बाला के प्रति मेरे द्वारा महापराध हुआ। यदि मैं इसी समय विरहाग्नि में दग्ध उस सुकुमारी से नहीं मिलूँगा तो वह अब निश्चित ही मरण को प्राप्त हो जायेगी।” यह सोंचकर पवनञ्जय उसी क्षण आवश्यक सामग्री लेकर मित्र प्रहसित के साथ भवन में आये। प्रहसित ने अंजना के पास बसन्तमाला द्वारा पति आगमन के समाचार भेजे। अपने आराध्य को आगमन सुनकर एवं उन्हें सम्मुख देखकर अंजना विस्मित हो गई, उसे एकाएक विश्वास नहीं हुआ। वह सोचने लगी कि कुछ क्षणों में ही मेरा विषसिक्त कर्म-कलश अनुपम सुधा से कैसे आप्लावित हो गया? कुमार अपनी अनुनय विनय पूर्ण मधुर वाक् रूपी जली से अंजना की विषादाग्नि को शान्त कर समयोचित कार्यों के संलग्न हो गये। कड़ा-मुद्रिका निशाली देकर कुमार उसी रात युद्ध के लिए पुनः प्रस्थान कर गये।

चिर वियोग के बाद पति के मुधर मिलन के प्राप्त हुई, सुख देने वाली पुलक भरी मादक स्मृतियों को संजोये हुए अंजना कालचक्र की धुरी पर त्वरित गति से गमन कर ही थी। गर्भ चिह्न भी शनैःशनैः प्रकट हो रहे थे, जिन्हें देख कर सास केतुमती ने सती पर कलंक का टीका लगाया और निर्भयतापूर्वक बसन्तमाला के साथ उसे राजा महेन्द्र के नगर के समीप छुड़वा दिया।

दिनमणि विपुल आंतक-त्रस्त एवं अर्न्दाह में झूलसती हुई अंजना को देख सकने एवं पाषाण को तरह कर देने वाले उसके करूण क्रन्दन को सुन सकने में असमर्थ होने से मानों अस्ताचल की ओट में छिप गये। जैसे-जैसे रात्रि धनीभूत होती जा रही थी, वैसे-वैसे अंजना का मनस्ताप बढ़ता जा रहा था। अब क्या होगा? अब क्या होगा?

आश्रय पाने की इच्छा से वह जिस आत्मीय जन के यहाँ गई, सर्वत्र “द्वार बन्द करो”, सर्वत्र “द्वार बन्द करो” की अवाज सुनाई देती थी। सखी के साथ चलती अंजना मातंग-मालिनी नामक भयंकर अटवी में पहुँची। एकाएक गुफा में प्रवेश करने का साहस नहीं हुआ। अतः अवसादमयी क्लान्त शरीर वाली अंजना ने कुछ क्षण विश्राम किया। पश्चात् अपनी दृष्टि गुफा पर डाली। वहाँ उन्होंने सुमेरू सदृश अचल, ध्यानमग्न अमितगति नाम के ध्यान मग्न मुनिराज को देखा।

दोनों का मन कमल आनंद से प्रफुल्लित हो उठा। वे अपना अपरिमित सुख भूल गईं। अन्दर जाकर भावपूर्वक तीन प्रदक्षिणा दी और भावपूर्वक बारम्बार नमस्कार किया। मुनिराज का ध्यान समाप्त हुआ। उन्होंने उन दोनों को अमृत प्रशान्त एवं गम्भीर वाणी में आशीर्वाद दिया।

वसन्तमाला के गर्भस्थ बालक और अंजना के विषय में पृच्छा की। करुणासागर गुरुराज के दोनों के भवान्तर बतलाते हुए कहा कि— “महारानी कनकोदरी की पर्याय में इसने अभिमान एवं सौतिया डाल के वशीभूत होकर भगवान् जिनेन्द्र की प्रतिमा को घर से बाहरी भाग में फिकवा दिया था। पश्चात संयम श्री आर्यिका का सम्बोधन प्राप्त कर यह नरकों से उत्पन्न होने वाले दुःखों से भयभीत हो गई। उस समय उसने शुद्ध हृदय सम्यकत्व धारण किया। अर्हन्त बिम्ब को वापिस उठाकर पूर्वस्थान पर विराजमान किया। तथा अव्युत्साहपूर्वक जिनेन्द्र की पूजन कर पुण्योजन किया।

कनकोदरी रानी आयु के अन्त में मरण कर स्वर्ग गई, वहाँ से च्युत हो राजा महेन्द्र की पुत्री हुई। पूर्वभव में इसने जिनेन्द्र प्रतिमा को गृह से बाहर रखा था उसी के फलस्वरूप यह इस प्रकार केदुःखों को प्राप्त हुई।

गर्भस्थ पुत्र महाभाग्यशाली, अखण्डित पराक्रम वाला एवं चरम शरीरी हैं। तू इस पुत्र से परम विश्रुति को प्रगाप्त होगी। अल्पकाल में पति से मिलन होगा।” मुनिराज के सन्तापहारी, अमृत तुल्य वचन सुनकर दोनों के हृदय प्रफुल्लित हो उठे। अत्यन्त हर्षित हुए उन्होंने बार-बार मुनिराज को नमस्कार किया। निर्मल हृदय के धारी मुनिराज उन दोनों को आशीर्वाद देकर पर्वत गुफा से उठाकर आकाश में विहार कर गये।

दिन बीता। रात्रि का आगमन हुआ। भयावह अन्धकार का साम्राज्य व्याप्त हो गया। तभी एक विकरात सिंह गुफा के द्वार पर आकर गर्जना करते हुए नाना कुचेष्टाएँ करने लगा। सिंह की भयंकर आकृति देख, भयभीत अंजना ने निर्णय कर लिया कि अब मृत्यु अनिवार्य हैं। जिस मृत्यु की कल्पना कर लोक निरन्तर भयभीत रहता है। उस मृत्यु को साक्षात् देख अंजना ने उसी क्षण शारीरिक मोह एवं आर्त-रौद्र ध्यान कर त्याग कर दिया। उपसर्ग निर्वृत पर्यन्त आहार जी का त्याग कर कार्यात्सर्ग में संलग्न हो गई। अंजना और सिंह के बीच मात्र तीन हाथ का अन्तर अवशेष देख गुफावासी गन्धर्व बालक के पुण्य अथवा सती अंजना के शील महात्मय से अष्टापद का रूप धारण कर सिंह का पराभव किया।

चैत्र कृष्णा अष्टमी को प्रातः श्रावण नक्षत्र और मीन लग्न से उदित रहते क्रान्ति पुञ्ज पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी क्षण गुफा का अन्धकार नष्ट हो गया

अंजना करुण विलाप किये जा रही थी। तभी आकाश मार्ग से जा रहे विद्याधर ने अपनी पत्नी सहित शंकित मन से गुफा में प्रवेश किया। वसन्तमाला ने स्वागत किया और अंजना का पूर्ण परिचय दिया। हृदय विदाकर वृत्तान्त सुनकर विद्याधर युगत अत्यन्त दुःखी हुआ। विद्याधर बोला— हे पतिव्रते! मैं हनूरूह द्वीप का राजा प्रतिमूर्य तेरा मामा हूँ। चिरकाल के वियोग ने तेरा रूप बदल दिया। अतः मैं पहचान नहीं सका।

“ये मेरे मामा हैं” यह ज्ञान होते ही अंजना मामा के गल से लगकर बहुत देर तक रोती रही। प्रतिमूर्य ने अंजना को धर्य बंधाकर उसका मुहँ धुलवाया और पार्श्वग नाम ज्योतिषी से ग्रह स्थिति पृच्छी। पश्चात उन सबको विमान में बैठाकर हनूरूह द्वीप के लिए प्रस्थान किया। थोड़ी दूर जाने पर महत्मा बालक माता की गोद से छूटकर नीचे एक शिला पर गिरा। बालक के गिरने की महाशब्द हुआ और शिला के हजारों टुकड़े हो गये। विमान नीचे अतरा तो सबने देखा के बालक शिला पर मुखे से चित्त पड़ा है। अँगूठा मुख में डालकर चूसते हुए अपनी मन्द मुस्कान से सुशांभत हो रहा है।

इस प्रकार का अद्भुत दृश्य देखकर राजा प्रतिमूर्य ने कहा कि “अहो! बड़ा आश्चर्य है; सद्योत्पन्न बालक ने वज्र सदृश शिलाओं का चूर्ण कर दिया। इसकी इस देवातिशायिनी शक्ति तरुण होने पर क्या करेगी? निश्चित ही यह चरम शरीरी है।” ऐसा जानकर उन्होंने हस्तकमल सिर से लगाये। स्त्रियों ने तीन प्रदक्षिणा दी और चरम शरीर को नमस्कार किया। तदन्तर आश्चर्य से भरी माता ने बालक को उठाकर छाती से लगा लिया।

हनूरूह नगर पहुँचकर बालक को जन्मोत्सव मनाया गया। शिला को चूर-चूर कर देने से उसका नाम “श्री शैल” रखा गया। चूँकि उसका संवर्धन हनूरूह नगर में हुआ था, अतः “हनुमान” नाम से प्रसिद्ध हुआ। दारुण दुःखमय, घनधोर अन्धकार युक्त रात्रि का अवसान तथा सुखमय सुप्रभात हो जाने से अंजना, पति और पुत्रादिक के साथ सुखावस्था को प्राप्त हुई।

भविष्यवेत्तों ने बता दिया कि चरमशरीर, तद्भव मोक्षमार्गी कामदेव हनुमान की माँ बनेगी, पर जन्म देगी मृच्छे तृणों और कंकड-पत्थरों पर जहाँ न सोहर गाने वाली सहेलियों होंगी न खुशी मनाने वाले परिवारजन्य। ऐसे यशस्वमी पुत्र की धर्मपरायण माँ दुराचारिणी का कल्लेक लिए घृमें, विधि की इससे भयावह विडम्बना क्या होगी? अंजना की व्यथा कथा का प्रारम्भ इस प्रकार है।

विक्षिप्त अंजना समझ ही नहीं पाती थी कि परित्याग का क्या कारण होगा? कहे भी तो किससे? वह मन ही मन सोचती है— “मुझे जीवित रहकर अब क्या करना है? इस अमर वेदलर का भार अन्ततः मुझे कब तक ढोना पड़ेगा? मैं अपनी पीड़ा-निधि किसे दिग्वाऊँ अपनी व्यथित कथा किसे सुनाऊँ? मेरे जीवन की यह कटुता किसे स्वयं क्षत कर रही है?”

पवनजंय के हृदय पर क्या बीती होगी जब वे अंजना को लिवाने हनूरूह द्वीप पहुँचे होंगे और वहाँ अपने से भी अधिक कांतिमान बच्चे को खेलते देखकर पृच्छा होगा— बेटे! तुम किमके लड़के हो किसके पुत्र हो? और बच्चा कहे— “हमारी मामूम आँखों में देख लो।” यह पूरा परिदृश्य पर्याप्त है कि अकारण ही 22 वर्ष तक पति का वियोग सहने वाली, पति मिलने पर भी दुराचारिणी

करार दिए जाने वाली पवित्र गर्भ को धारण करने वाली भी हतभागिनी बन जंगल-जंगल भटकने वाली अंजना के अंदर कौन सी इच्छा शक्ति, किस सुख सौभाग्य की लालसा, क्या प्राप्ति की आकांक्षा शेष थी...? क्या ऐसे पति की 22 वर्ष जिसने रहागिन में तड़पा-तड़पा कर जला डाला या उस पति की ही निशानी को जन्म देने की जिसने जन्मने से पूर्व ही घर से निष्कासित करा डाला या पति और पिता दोनों ही कुलों को कुलधर्म के बीच फँसने की जहाँ अंजना की दयनीय अवस्था उपहास बन गई थी, फिर किस लिए इस जीवन को मृत्यु की ओर नहीं धकेला अंजना ने? यदि सच कहा जाए तो वह थी अंजना की कर्तव्यपरायणता। अंजना ने 22 वर्ष तक दूर रहने वाले से चुपचाप आगमन पर न रोष प्रकट किया, न दुःख, बल्कि सहज ही समर्पण कर डाला चूँकि वह जानती है कि जाने वाले का यूँ अनायास लौटना ही उसे जो आत्मप्रबोध दे रहा है वही पर्याप्त है। इस संसार के एक एक अणु को उसने अपनी दृष्टि से देखा। जीने का संबल, संघर्षों से जूझने की अदम्य शक्ति उसे वन में मिली, वन में स्थित साक्षात् देव शास्त्र गुरु से मिली, बिना आवाज की भीगी हुई धूप से मिली, फूलों की सहज सुगन्ध

आत्मसात कर फिर घर-घर पहुँचाती पवन से मिली, बिना सहज सुगन्ध आत्मसात कर फिर घर-घर पहुँचाती पवन से मिली, बिना किसे के सींचे और बाये मीटरों लम्बे हरे पतों से लदे वृक्षों से मिली।

इस शान्त किन्तु स्वावलंबी ऊर्जास्विता प्रकृति की गोद में सारा संसार छोड़कर अंजना आई तो शान्तचित्त होकर वह समझ गई कि भगवान् की प्रतिमा एकदम शान्त, रात-दिन जलने वाली दीप की लौ शान्त, भक्त के मन को तृप्त करने वाली प्रत्येक वस्तु शान्त है तो निरर्थक है, आवाज का करना अथवा विद्रोह के स्वर भी मात्र अरण्य-रोदन है। अंजना की शांति और धैर्य का ही परिणाम था कि उसने अपना तो जन्म सार्थक किया ही अपनी क्रूर सास को, सहज ही बहकने वाले पति को भी सन्मार्ग दिखाया तथा सम्पूर्ण जगत को दिया एक ऐसा पुत्र रत्न जिसने सदा सदा के लिए इस संसार से 'राक्षसत्व' मिटाकर 'देवत्व' की प्रतिष्ठापना की। इतिहास ही नहीं वर्तमान भी ऋणी है उस शांत मूर्ति अंजना का जिसका मातृत्व आज भी जन-जन को अनुप्राणित कर रहा है। धन्य है अंजना.... और धन्य है उसका मातृत्व!!

के-एच. 216 कविनगर गाजियाबाद

साहित्य-समीक्षा

कृति नाम- 'अपने दीप जलाओ'

संकलनकर्ता- श्री अजीत कुमार कासलीवाला

(बलून्दा वाला)

संपादक- प्रा. अरुण कुमार जैन, शास्त्री, ब्यावर

प्रकाशक- पीयूष प्रकाशन, जैन मंदिर के पास, छावनी, ब्यावर

पृष्ठ सं. - 150, **मूल्य -** 70 रुपये।

समीक्ष्य कृति 'अपने दीप जलाओ' श्री अजीत कुमार कासलीवाल की विवेकी दृष्टि एवं नीर-क्षीर विवेकी हंस की तरह सार को चुनने का परिणाम है। 77 शीर्षकों में निबद्ध इस कृति में अनेक विद्वानों के आलेखों, कहानियों एवं प्रेरक संस्मरणों को सँजोया गया है ताकि जनसामान्य इन्हें पढ़कर अपने जीवन को सुधार सके, चारित्रवान बना सके। इस कृति को कोई भी। किसी भी सम्प्रदाय/ धर्म का व्यक्ति पढ़े वह प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा? आलेखों के शीर्षक- आध्यात्मिकता निष्क्रियता नहीं सिखाती प्रार्थना एवं विनम्र पुरुषार्थ, पुत्रों के नाम वाली लोक सेवामी सृजन शिल्पी ऐसे हों, पगडण्डियों में न भटकें, अपना दीपक स्वयं बनो, सज्जनता ही नहीं साहज भी दुःख और दुष्टता की जननी दुर्बलता, गर्भपात महापाप, हँसे तो दिल खोलकर बने आत्महत्या नहीं, मांसाहार, गुनाह बेलज्जत, कृत्रिम प्रसाधन हमें क्रूर निर्दयी बनाते हैं, सात्विक भोजन की महत्ता आदि आकर्षित करते हैं और विचारों पर विचार करने, उनके

परिपालन के लिए विवश करते हैं? इन लेखों के ये विचार कितने प्रासंगिक हैं-

जीवन वन तक पहुँचना समय साध्य है पर जोखिम उसमें नहीं है।

डर अपने आप में एक संकट है। वह पक्षाघात की तरह आक्रमण करता है और अच्छे खासे आदमी को देखते-देखते अपंग, असमर्थ बनाकर रख देता है?

मनुष्य का सृजन जिन तत्त्वों से हुआ है वे ऐसे प्रखर हैं कि हर अभाव को दूर कर सकते हैं?

यदि तथ्य सशक्त हो और संकल्प में सच्चाई हो तो छोटा शुभारंभ भी क्रमशः बढ़ सकता है?

चेहरे की प्रसन्नता बताती है कि व्यक्ति भीतर से भारी भरकम है।

वास्तव में यह कृति अत्यन्त पठनीय एवं मननीय है इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है? कुशलता से संकलन/प्रकाशन के लिए भाई अजीत कुमार कासलीवाला एवं संपादन कला में दक्ष प्राचार्य अरुणकुमार जी शास्त्री बधाई के पात्र हैं। एक कमी अवश्य खटकती है कि लेखकों के नाम नहीं दिए यदि दिए जाते तो उनके उपकार का किंचित ऋण चुकाया जा सकता। कवर चित्र नयानाभिराम है।

डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'

पंच कल्याणक क्यों और कैसे!

डॉ. (श्रीमती) ज्योति जैन

यह जीव अनादि काल से संसार में भ्रमण करता हुआ दुःख उठा रहा है। वह सुख की कामना करता है और दुःखों से भयभीत भी है। पं. दौलतराम जी ने लिखा है -

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त,
सुख चाहें दुख तें भयवन्त।
तातें दुखहारी सुखकार,
कहें सीख गुरु करुणाधार ॥

जगत में द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप पाँच अकल्याण हैं। पंचकल्याणकों द्वारा उनका नाश किया जाता है। तीर्थकर भगवन्तों के पाँचों कल्याणक होते हैं किन्तु अन्य मोक्षगामी जीवों के ज्ञान और निर्वाण ये दो ही कल्याणक होते हैं।

पंचकल्याणक उसी महान् आत्मा के होते हैं जो दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओं के द्वारा अपने आपको पवित्र बना लेता है। दर्शन विशुद्धि के काल में अपाय विच्य धर्म-ध्यान के द्वारा जब यह लोक कल्याण की शुभ भावना से युक्त होता है तब उस शुभराग के फलस्वरूप उसे तीर्थकर प्रकृति का बन्ध होता है।

तीर्थकर तीर्थ अथात् धर्म के प्रवर्तक कहलाते हैं। तीर्थ का अर्थ घाट भी होता है अतः जिसके द्वारा संसाररूपी सागर से पार हुआ जाए वह तीर्थ है और उसका प्रवर्तन करने वाले तीर्थकर भगवन्त हैं। तीर्थकर भगवान् अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा मोक्षमार्ग का उपदेश देकर संसार चक्र में फंसे प्राणियों के शाश्वत कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं। तीर्थकर अपने समय में संसार के समस्त प्राणियों द्वारा पूज्य होते हैं और निर्वाण के पश्चात् प्रतिमा, जिनबिम्ब या मूर्ति के माध्यम से सदैव पूजित रहते हैं।

अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनप्रतिमा और जिनमन्दिर ये नवदेवता हैं जिनमें जिनप्रतिमा परिगणित है। प्रतिमायें तदाकार और अतदाकार कैसी भी हों वे सभी पूज्य होती हैं जब उसका निर्माण प्रतिष्ठा शास्त्र के अनुसार हुआ हो तथा उनकी मन्त्रों द्वारा विशेषतः दिगम्बर मुनि द्वारा प्रदत्त सूरिमन्त्र से प्रतिष्ठा कर दी गयी हो।

जिनप्रतिमा की यह प्रतिष्ठा पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के बिना नहीं हो सकती अतः मूर्ति को प्रतिष्ठित करने के लिए दूसरे शब्दों में उसकी प्राण-प्रतिष्ठा के लिए पंचकल्याणक महोत्सव आवश्यक ही नहीं अपरिहार्य है। जिनप्रतिमा के बिना गृहस्थ की क्रियायें पूरी नहीं हो सकती। भावशुद्धि के लिए गृहस्थ को देवदर्शन और जिनपूजन आवश्यक है जो प्रतिमा के बिना सम्भव नहीं। आगम

के अनुसार जो गृहस्थ वीतराग मुद्रा के दर्शन कर अपने वीतराग स्वभाव की ओर दृष्टिपात करता है उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। आचार्य पूज्यपाद स्वामी ने जिनबिम्ब दर्शन को सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का बाह्य साधन बताया है। प्रतिमा तीर्थकरों की बनाई जाती है और चूंकि तीर्थकर गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण इन पाँच कल्याणकों से युक्त होते हैं। इसीलिए स्थापना निक्षेप से प्रतिमा में भी पाँच कल्याणकों की स्थापना की जाती है।

विधिपूर्वक पंचकल्याणक से प्रतिष्ठित मूर्ति पूज्य होती है और उसमें अनेक अतिशय अवतीर्ण होते हैं। पंचकल्याणक पूजा को इन्द्रध्वज पूजा भी कहा जाता है, इसमें पूजक अपने आप में इन्द्र की कल्पना करता हुआ भक्ति विभोर होकर पूजा करता है। विशुद्ध भावों से की गई यह पूजा सातिशय पुण्य बन्ध का कारण होती है।

आजकल यह प्रश्न उठाया जाता है कि पंचकल्याणक प्रतिष्ठा बहुत खर्चीली हो गई है और उसमें बहुत आडम्बर करना पड़ता है। हमारे आचार्यों ने कहा है कि “सावद्यलेशो बहुपुण्य राशि” जिसमें पाप बहुत थोड़ा हो और असीम पुण्य का बन्ध हो वह कार्य अवश्य करना चाहिए।

पंचकल्याणक को धूमधाम से करने का प्रयोजन यह भी है कि सभी लोग इसमें सम्मिलित हों और अपने भावों से पुण्य-अर्जन करें। हम राग-रंग के कार्यों में तो लाखों-करोड़ों खर्च करते हैं फिर ये तो धर्मिक आयोजन हैं। इतना अवश्य है कि पूजा ख्याति लाभ की दृष्टि से नहीं करनी चाहिए। आज शहरों में नई-नई कालोनियाँ बन रही हैं, मन्दिर बन रहे हैं, अतः पंचकल्याणक भी आवश्यक हैं। एक बात और कहना चाहूँगी कि जहाँ पहिले से ही मन्दिर जीर्ण-शीर्ण अवस्था में हैं, सैकड़ों मूर्तियाँ हैं और पूजा-व्यवस्था नहीं है वहाँ पंचकल्याणक की जगह जीर्णोद्धार कल्याणक अवश्य होना चाहिए। आज भगवान् के साथ भक्तों और प्रतिमा के साथ पूजा करने वालों की संख्या बढ़ाने की परम आवश्यकता है।

प्रतिष्ठा की परिभाषा करते हुए आचार्य नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने लिखा है “प्रतिष्ठा स्थापना न्यासो जिनादेः प्रतिमादिपु” अर्थात् प्रतिमादिक में जिनेन्द्र भगवान् के न्यास अथवा स्थापना को प्रतिष्ठा कहते हैं। मूर्ति में जब जिनेन्द्र भगवान् की स्थापना हो जाती है तब साधक की दृष्टि में वह धातु, पाषाण आदि की मूर्ति न रहकर साक्षात् जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिकृति बन जाती है। उस प्रतिष्ठित मूर्ति के पास पहुँचकर साधक यह सोचता है कि

में माक्षात् जिनेन्द्र देव की शरण में हूँ। पाँचों कल्याणकों की क्रियायें प्रतिष्ठाचार्य विधि-पूर्वक करते हैं। प्रतिष्ठा ग्रन्थों में प्रतिष्ठाचार्य तथा प्रतिष्ठा कराने वालों के लक्षण दिए हैं। इस लघु लेख में उनकी चर्चा सम्भव नहीं। यहाँ संक्षेप में पाँचों कल्याणकों का स्वरूप जानना आवश्यक है।

गर्भ कल्याणक : तीर्थकर प्रकृति से युक्त जीव जब माँ के गर्भ में आता है तो उसके छः माह पहिले से ही अतिशयकारी घटनाएँ होने लगती हैं। सौधर्म इन्द्र की आज्ञा पाकर कुबेर स्वर्गवत् नगरी का निर्माण करता है जिसे जिनेन्द्रपुरी कहा जा सकता है। तीर्थकर के जन्म के पन्द्रह माह पूर्व से ही जिनेन्द्रपुरी में प्रातः, मध्याह्न व सायं तथा मध्यरात्रि में चार बार साढ़े तीन करोड़ रत्नों की वर्षा होती है। इस प्रकार चौदह करोड़ रत्नों की वर्षा प्रतिदिन होती है।

तीर्थकर प्रभु की माँ रात्रि के अन्तिम प्रहर में निम्न सोलह स्वप्न देखती है। पंच मंगल पाठ में इन स्वप्नों का इस प्रकार वर्णन किया गया है :-

सुर कुंजर सम कुंजर धवल धुरंधरो ।
 केहरि केशर शोभित नख-शिख सुन्दरो ॥
 कमला कलश-न्हवन, दुइ दाम सुहावनी ॥
 रवि शशि-मंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥
 पावनि कनक घट जुगम पूरन, कमल कलित सरोवरो ।
 कल्कोलमाला कुलित सागर, सिंह पीठ मनोहरो ॥
 रमणीक अमरविमान, फणिपति-भुवन रवि छवि छाजई ॥
 रुचि रतनराशि दिपंत, दहन, सु तेज पुंज विराजई ॥

प्रातः वह अपने पति से इन स्वप्नों का फल पूछती है। तीर्थकर के पिता फल बतलाते हुए कहते हैं कि तुम्हारे गर्भ से तीर्थकर जन्म लेंगे। स्वर्ग से आयी देवियाँ माता की सेवा करती हैं और अनेक प्रकार के मनोरंजनों से उनका मन बहलाती हैं।

जन्म कल्याणक : जब तीर्थकर बालक का जन्म होता है तो सर्वत्र सुख और शान्ति छा जाती है। नारकी जीव भी क्षणभर को सुखानुभूति करते हैं। इन्द्र अपने परिवार और चार निकाय के देवों के साथ जिनेन्द्रपुरी की तीन प्रदक्षिणा कर स्तुति करते हैं। इन्द्राणी मायामयी बालक को रखकर यथार्थ बालक को गोद में लेकर ऐरावत हाथी पर आरूढ़ हो सुमेरु पर्वत पर पाण्डुक वन की ऐशान दिशा में बनी पाण्डुक शिला पर बालक को विराजमान करते हैं। पंक्तिबद्ध देवों द्वारा 1008 मणियों के कलशों में क्षीर सागर से लाये गये जल से भगवान् का अभिषेक करते हैं पश्चात् घर ले जाकर धूमधाम से जन्मोत्सव मनाते हैं।

तप कल्याणक : किसी निमित्त को प्राप्त कर तीर्थकर बालक के मन में वैराग्य ज्योति उत्पन्न होती है। तभी लौकान्तिक देव आकर उनकी दीक्षा, तप या वैराग्य की अनुमोदना करते हैं

और कहते हैं कि हे भगवान्! आपने जिस जैनेश्वरी दीक्षा लेने का निश्चय किया है वही एकमात्र आत्म कल्याण का उपाय है। भगवान् तपोवन जाने के लिए जिस पालकी में विराजमान होते हैं उसे भूमि गोचरी मनुष्य अपने कंधे पर सात कदम ले जाते हैं उसके बाद विद्याधर तदनन्तर इन्द्रादि देवता कंधों पर रखकर आकाशमार्ग से दीक्षा वन में पहुँच जाते हैं। वहीं दीक्षा कल्याणक मनाया जाता है। तीर्थकर समस्त वस्त्राभूषण और परिग्रह का त्याग कर देते हैं वे पद्मासन में पूर्व की ओर मुख करके विराजमान होते हैं और पाँच मुट्टियों में पकड़कर अपने सिर के केशों को उखाड़ डालते हैं। वे कठोर तप करके अपने कर्मों की निर्जरा करते हैं।

ज्ञान या केवलज्ञान कल्याणक : कठोर तप के बल से भगवान् ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, मोहनीय, अन्तराय इन चार कर्मों को नष्ट कर केवलज्ञान को प्राप्त करते हैं। केवलज्ञान के द्वारा वे तीनों लोकों और तीनों कालों के सभी द्रव्यों और पर्यायों को हाथ में रखे हुए आंखले की तरह देखते हैं। केवलज्ञान की ज्योति प्रकट होते ही कल्पवासी आदि देवताओं के घर घंटा आदि के शब्द होने लगते हैं। वे आकर केवलज्ञान प्राप्ति महोत्सव मनाते हैं और भगवान् की पूजा करते हैं।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर समवशरण की रचना करता है जिसमें मुनि-आर्यिका, श्रावक-श्राविकाएँ, देव, पशु-पक्षी आदि सभी बैठकर भगवान् की अमृतमयी वाणी का पान करते हैं। भगवान् की इस वाणी को दिव्य ध्वनि कहते हैं। इसे सभी अपनी-अपनी भाषा में समझते हैं। तीर्थकर सबके कल्याण की बात कहकर उनका मार्ग प्रशस्त करते हैं।

मोक्ष या निर्वाण कल्याणक : समवशरण के साथ सर्वत्र घूमकर अपनी दिव्य देशना से भव्य जीवों को कल्याण का मार्ग दिखाकर योग निरोध के बल से तीर्थकर चारों कर्मों का नाश करके अयोग केवली बन जाते हैं। ऊर्ध्वगमन का स्वभाव होने से वे लोकाकाश के सबसे ऊपर सिद्ध शिला पर जाकर विराजमान हो जाते हैं। अनन्तज्ञान, अनन्तसुख, अनन्तवीर्य रूप और अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर लेते हैं। भगवान् का शरीर कपूर की तरह उड़ जाता है। उसके परमाणु त्रिभुवन व्याप्त हो जाते हैं।

हमारे पुण्य कर्म के उदय से हमें तीर्थकर भगवान् के पंचकल्याणक मनाने का अवसर मिला है अतः पाँचों कल्याणकों में प्रतिदिन पहुँचकर क्रियाएँ देखना चाहिए तथा भावना भाएँ कि हे प्रभु हमारे भी ये गर्भ, जन्म अन्तिम हों हम भी तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा कर, केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त करें।

तो आइये! उठिये! संकल्प कीजिए! कि हम होने वाले पंचकल्याणकों में प्रतिदिन की क्रियाएँ अवश्य देखेंगे।

शिक्षक आवास
 कुन्द कुन्द महाविद्यालय परिसर
 खतोली - 251201 (उ.प्र.)

विवाह

पं. सनतकुमार विनोद कुमार जैन

तीर्थकर प्रभु की दिव्य ध्वनि में मुनि धर्म और गृहस्थ धर्म का कथन किया गया है। मुनि धर्म निवृत्ति मूलक एवं गृहस्थ धर्म प्रवृत्ति मूलक है। गृहस्थ धर्म से भी मोक्ष की साधना संभव है। गृहस्थ धर्म का आधार गृहिणी है। नीतिकारों ने गृहिणी को ही घर कहा है। गृहस्थ धर्म के पालन एवं त्रिवर्ग अर्थात् धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की सिद्धि के लिए सागर धर्माभूत में विवाह करने का उल्लेख किया गया है।

सत्कन्यां ददता दत्तः सत्रिवर्गो गृहाश्रमः।

गृहं हि गृहिणी माहुर्न कुड्यकटसंहतिम् ॥ 59 ॥

अर्थात्- जो व्यक्ति सधर्मों को कन्यादान देता है वह उसे गृहस्थाश्रम ही देता है क्योंकि कुल पत्नी का नाम ही घर है। दीवारों और छप्पर आदि का नहीं। तप के स्थान को आश्रम कहते हैं। घर रूपी तप स्थान को गृहस्थाश्रम कहते हैं। धर्म, अर्थ और काम का मूल स्त्री है। योग्य स्त्री के होने पर ही संयम, देवपूजा और दान सधते हैं। इस कारण स्त्री धर्म पुरुषार्थ में कारण है। योग्य स्त्री के होने पर वेश्यादि व्यसन से व्यावृत्ति होती है। जिससे धन की रक्षा होती है एवं स्त्री के सद्भाव में आकुलता का अभाव होने से निश्चित होकर धन का अर्जन, रक्षण और वर्धन होता है। इस प्रकार अर्थ पुरुषार्थ की सिद्धि स्त्री से होती है। योग्य स्त्री के होने पर ही प्रीति और संभोग से सम्पन्न रुचिर अभिलाषा रूप की प्राप्ति होती है इस प्रकार कन्यादान से तीनों पुरुषार्थों के दान का फल मिलता है।

श्रावक को धर्म के लिए सन्तान, भोग एवं अतिथि सेवा का उद्देश्य लेकर विवाह करना चाहिये।

धर्म सन्ततिमक्लिष्टां रतिं वृत्त कुलोन्नतिम्।

देवादि सत्कृतिं चेच्छन् सत्कन्यां यत्र तो वहेत् ॥ 60 ॥

अर्थात्- धर्म के सन्तान को अथवा धर्म परम्परा चलते रहने को, विघ्न रहित स्त्री संभोग को, चारित्र तथा कुल की उन्नति को और देव तथा ब्राह्मण अतिथि वगैरह के सत्कार को चाहने वाले पाक्षिक श्रावक को प्रयत्न पूर्वक उत्तम कन्या से विवाह करना चाहिये। विवाह के मूल उद्देश्य को गृहस्थ धर्म के अन्त तक नहीं भुलाना चाहिये। धर्म सन्तति, देव शास्त्र एवं गुरुओं की सेवाभक्ति को गृहस्थ धर्म का मुख्य अंग मानकर इन कार्यों में निरन्तर लगे रहना चाहिये।

विवाह के पाँच अंग कहे गये हैं, इनके बिना विवाह पूर्ण नहीं माना जाता है-

वाग्दानं प्रदानं च वरणं पाणि पीडनम्

सप्तपदी पंचाङ्गों, विवाहः परिकीर्तितः।

ताव द्विवाहो नैव स्या द्यावत्सप्तपदी भवेत्।

तस्मात्सप्तपदी कार्या, विवाहं मुनिभिः स्मृता ॥

पाँच अंगों द्वारा ही विवाह संस्कारित एवं सुखमय होता है हमें आचार्यों/नीतिकारों के सिद्धान्तों को नकारना नहीं चाहिये। जो इन्हें नजरअंदाज कर के प्रेमविवाह (गन्धर्व विवाह) करते हैं उनके दुष्परिणाम सामने आने लगे हैं। क्योंकि विवाह पूर्व वर कन्या का कुशल अनुभव अभिभावकों द्वारा चयन नहीं हो पाता।

सुखमय गृहस्थ जीवन को विवाह के लिये योग्य कन्या एवं योग्य वर का चयन करना चाहिये इसमें भी योग्य कन्या का चयन अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि सुयोग्य शिक्षित कन्या आगे चलकर कर्तव्यपरायण भार्या और प्रेम वत्सला माता का रूप ग्रहण करती है। कन्या के विवाहोपरान्त अनेक रूप होते हैं। भोजन के समय माँ, रात्रि के समय योग्य वेश्या, रोगावस्था में कुशल परिचारिका एवं विशेष कार्यों में मंत्रणा देने वाले मंत्री का कार्य करती हैं। अतः कन्या चयन के समय सावधानी रखना चाहिये। वर के चयन के लिए भी आचार्यों नीतिकारों ने अनेक निर्देश दिये हैं। पद्म पुराण में वर के नौ गुण कहे हैं-

कुलं शीलं धनं रूपं समानत्वं बलं वयः देशो विद्यागमश्चेति यद्यप्युक्तावरेगुणाः।

अर्थात्- कुल, शील, धन, रूप, समानता, बल, अवस्था, देश और विद्यागम ये वर के नौ गुण कहे गये हैं। फिर भी वर चयन में परिवार के सदस्यों के अलग-अलग दृष्टिकोण रहते हैं।

कन्या हि वृणते रूपं माता वितं पिता श्रुतं।

बान्धवा हित मिच्छन्ति मिष्ठात्रेतेरे जनाः ॥

अर्थात्- कन्या, वर के सौन्दर्य को देखती है, कन्या की माँ वैभव को देखती है, पिता वर की योग्यता देखता है, बान्धव जन अपने हितों की इच्छा करते हैं जबकि जन, प्रीतिभोज के मिष्ठान पर ध्यान रखते हैं। अतः कन्या एवं वर के चयन के समय अत्यन्त कुशलता के साथ आचार्यों/नीतिकारों के द्वारा प्रतिपादित गुण-अवगुणों को ध्यान में रखना चाहिये।

विवाह की परम्परा अनादि काल से प्रचलित है। कर्मभूमि के प्रारम्भ से ही विवाह करने का उपदेश कुलकरों द्वारा दिया जाता है। कर्मभूमि के समाप्त होने पर विवाह कार्य भी बन्द हो जाते हैं परन्तु पुनः कर्मभूमि के प्रारंभ में कुलकर विवाह करने का उपदेश देते हैं। इस प्रकार यह पद्धति अनादिकाल से चल रही है। तीर्थकर, चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र आदि के अनेक विवाहों का उल्लेख अनेक शास्त्रों में है। छठवें काल में स्त्री पुरुष जानवरों की तरह नंगे एवं बिना आचार-विचार के विचरण करते हैं। इनमें किसी प्रकार का सदाचरण नहीं रहता। उत्सर्पणी काल के दूसरे दुखमा काल के एक हजार वर्ष शेष रहने पर कुलकरों की उत्पत्ति होती है वे उपदेश करते हैं कि विवाह करो और

सदाचार पूर्वक रहो तब विवाह प्रारंभ होते हैं, तभी से विवाह एवं धर्म के संस्कार प्रारंभ होते हैं, अतः यह निश्चित है कि विवाह से ही धर्म का निर्दोष पालन हो सकता है।

पुत्र और कन्या के जन्म समय हर्ष, विषाद और शिक्षा देने के समय भेद करते हैं जबकि दोनों ही शिक्षा प्राप्त कर प्रतिभावान बनते हैं। प्रथमानुयोग के ग्रंथों में अनेक स्थानों पर कन्या को शिक्षित करने के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। सर्वप्रथम आदि प्रभु ऋषभदेव ने अपनी दोनों कन्याओं को लिपिविद्या एवं अंकविद्या की शिक्षा दी और भी अनेक प्रसंग देखने को मिलते हैं कन्या का योग्य शिक्षा के लिये गुरु के पास भेजा जाता था। जैनागम की यह स्वस्थ परम्परा आज बहुत ही प्रासंगिक है। कन्या जितनी सुशिक्षित होगी मानव जीवन उतना ही सुखी एवं समृद्ध होगा। आज स्त्रियां प्रत्येक क्षेत्र में उन्नतिशील हैं। प्राचीनकाल से नारी का सम्मान रहा है। जिस समाज में नारी का सम्मान रहता है वह समाज सुशील एवं संस्कारित समाज होता है। जिस प्रकार शिक्षित पुरुष की गरिमा होती है उसी प्रकार कन्या भी यदि सुशिक्षित हो तो गरिमा होती है। इस प्रकार का उल्लेख आदि पुराण में है -

विद्यावान् पुरुषो लोके संमतिं याति कोविदैः।

नारी च तद्वती धत्ते स्त्री सृष्टे रग्रिमं पदम् ॥ 98 ॥

अर्थात् - इस लोक में विद्यावान् पुरुष पण्डितों के द्वारा भी सम्मान को प्राप्त होता है और विद्यावती स्त्री भी सर्व श्रेष्ठ पद को प्राप्त होती है। सुशिक्षित, संस्कारयुक्त एवं साहसी कन्याएँ श्रेष्ठ वधू, भार्या, गृह लक्ष्मी आदि पदों को धारण करती हैं। जैन साहित्य में पत्नी की भूमिका गृहस्थ जीवन में सहचरी के रूप में रही है। वह अपने पति की मित्र, सलाहकार एवं संरक्षिका के रूप में प्रतिष्ठित थी। पति के साथ मन, वचन काय से रहना नारियों का परम कर्तव्य है। पत्नी के समान व्यक्ति का कोई बन्धु नहीं है, कोई गति नहीं है और धर्म-आराधना में भार्या के समान कोई सहायक नहीं है। वैवाहिक जीवन को सार्थक और सुखमय बनाने के लिए पति-पत्नी में सामंजस्य और आपसी प्रेम व्यवहार होना आवश्यक है। यदि पति-पत्नी में कोई कमी है, तो उसे स्नेहपूर्ण व्यवहार और सत्प्रेरणा से दूर किया जा सकता है। पत्नी को धर्म संस्कारों में अग्रणी होना चाहिए। क्योंकि यदि पत्नी धार्मिक संस्कारों से सहित होगी तो पति सहित पूरे परिवार को धार्मिक कर देगी। जिस प्रकार चेलना रानी ने अपने बौद्ध धर्मावलम्बी पति को जैन बना लिया था। विषय वासना एवं पापों में आसक्त स्त्री पति सहित पूरे परिवार को ले डूबती है। पति को हमेशा पत्नी से प्रेम करते हुए धर्म के क्षेत्र में उत्साहित करते रहना चाहिए। गृहस्थ सुख प्राप्त करने वाले को पत्नी का आदर करना चाहिए।

स्त्रीणां पत्युरूपेक्षेवं परं वैरस्य कारणम्,

तत्रोपेक्षेत जातु स्त्रीं वाञ्छंल्लोक द्वयेहितम् ॥ 127 ॥ सा.ध.

अर्थात् - स्त्रियों के पति का अनादर ही विशेष वैर का

कारण होता है इसलिए इस लोक और परलोक में सुख को चाहने वाला पुरुष कभी भी स्त्री को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देखे। पतिव्रता स्त्रियाँ धर्म, विभूति, सुख व कीर्ति का एक घर या श्वजा होती हैं -

शीलवती एवं कर्तव्यपरायण गृहणी सन्तानप्राप्ति करते ही माता के प्रतिष्ठित पद को सुशोभित करती है। माता की प्रतिष्ठा और महत्व प्रायः हर युग में रहा है क्योंकि माता गृहस्थ जीवन की धुरी है। उसके द्वारा किये गये संस्कार व्यक्ति को महापुरुषों की कोटि में बैठा देते हैं। प्रतिभावाना नारी पुरुषों को ही प्रतिभावान बनाने में सक्षम होती है। पुरुष और स्त्री का समान महत्व और गौरव समान होता है। अधिकार भी समान होता है। आदि पुराण में भी आचार्य जिनसेन स्वामी ने पिता की सम्पत्ति पर पुत्र के समान पुत्री का भी समान अधिकार माना है।

पुत्र्यश्च संविभागर्हाः समं पुत्रैः समांशकैः 138/154

आदिपुराण

अर्थात् - पुत्रों के समान पुत्रियों को भी समान भाग देना चाहिए। कन्या का पिता अपनी बेटी को कभी भी भेंट देने में कमी नहीं करता। पुत्र और पुत्रियां माता-पिता को समान होते हैं।

गृहस्थ जीवन में वर और कन्या का भी समानता का स्थान है। विवाह के समय कन्या देने वाले की कभी उपेक्षा नहीं करना चाहिए वह बड़ा उपकारी है। जो वर के गृहस्थ जीवन का आधार स्वरूप कन्या प्रदान करता है। कन्या के साथ कन्या का अभिभावक अपनी शक्ति के अनुसार और भी अनेक भेंट देता है। यह उस की मानता है।

जो व्यक्ति भेंट की वस्तु को ही सब कुछ मानकर वस्तु को श्रेष्ठ और व्यक्ति को निम्न मानने लगते हैं, वे अपने साथ विश्वासघात करते हैं। क्योंकि जो सहर्ष दिया जाय वह श्रेष्ठ होता है और जो जबरदस्ती खींचतान करके लिया जाय वह पाप है। दहेज की परिभाषा आज परिवर्तित होती जा रही है। धर्म, अर्थ और काम पुरुषार्थ की सिद्धि में विवाह- जैसे गृहस्थ धर्म में भी हमें पुण्य-पाप जैसे कार्य की विवेचना करना चाहिए। अपनी बेटी की तरह दूसरे की भी बेटी है, ऐसा चिन्तन पुण्य और कठोर हृदय से रूपय समेटना दयाभाव का अभाव होना पाप है।

पुराणों में कन्या की मांग करना पाया जाता है किन्तु कन्या के साथ धन की याचना का कोई उल्लेख नहीं मिलता। दहेज के विकराल रूप ने समाज को पतन की राह दिखा दी है। प्रत्येक व्यक्ति यदि विवाह की विशेषता को गम्भीरता से सोचे तो वह दहेज को महत्व नहीं देगा और हमारा समाज एक आदर्श समाज बनेगा।

संस्कारित समाज ही प्राणियों का उपकार करने में ममर्थ होती है। समाज का आधार विवाह है। विवाह प्रवृत्ति रूप गृहस्थ धर्म का प्रारंभ है। यही प्रवृत्ति रूप धर्म, निवृत्ति रूप में परिवर्तित

होता है तथा निवृत्ति धारकों को वैयावृत्य में सहायक होकर पुण्य लाभ कराती है। गृहस्थ जीवन विशाल संभावना से भरा होता है। लौकिक एवं पारलौकिक विभूतियों का संग्रह गृहस्थ सुगमतापूर्वक कर सकता है, प्राणिमात्र के प्रति अनंत उपकार करने की सामर्थ्य गृहस्थ धर्म में है। पाणिग्रहण से आरंभ होने वाला गृहस्थ धर्म इतिहास के पुण्याक्षरों की अटूट गाथा है। इस पवित्र जीवन को वर वधु मिलकर चलाते हैं। तथा अग्नि की साक्षी में जीवन भर के लिए सहचारिता की शपथ लेते हैं। यह शपथ वापिस नहीं ली जा सकती, तोड़ी नहीं जा सकती और अतिचार से मलिन भी नहीं की जा सकती। मन वचन काय से इसे जीवन पर्यन्त निभाना होता है। उन्हें निरन्तर यह विश्वास बना रहता है कि उनका जीवन परस्पर

समर्पित है। पति-पत्नी एक दूसरे के पूरक हैं किसी एक के बिना जीवन अपूर्ण है। जीवन को रथ की एवं पहियों को पति पत्नी की उपमा दी गई है। यदि पहिया असमान है तो जीवन रथ रुक जाता है, गति नहीं रहती। इसी को दृष्टि में रखकर समान गुणवान, कुलवान, रूपवान बुद्धिवान वर एवं कन्या का संबंध करना चाहिए। जीवन का आधार परस्पर विश्वास है। योग्य वर और कन्या के चयन से जीवन सुखमय बनता है। गृहस्थ जीवन के सुखपूर्वक व्यतीत करने के साथ जीवन में धर्म धारण करने का भाव निरंतर रहना चाहिए तभी सप्तपदी अर्थात् सप्तपरम स्थान प्राप्त करने की भावना सार्थक होगी।

रजवांस, सागर (म.प्र.) 470442

जैन समाज के गौरव पुरुष सम्मानित होंगे

भारतीय साहित्य, कला, संस्कृति, समाज, स्वतंत्रता आंदोलन, प्रशासन तथा राजनीति आदि के अभ्युत्थान में जैन समाज का सदा ही गौरवशाली स्थान रहा है। इन कार्यों में अपने जीवन को प्राणपण से आहूत/समर्पित करने वालों को राष्ट्र के द्वारा समय-समय पर गौरव प्रदान किया जाता है।

25 जनवरी 2003 को राष्ट्रपति भवन, नई दिल्ली के द्वारा इस वर्ष के सर्वोच्च नागरिक अलंकरणों की घोषणा की गई है। इनमें देश की 4 प्रमुख हस्तियों को पद्म विभूषण, 34 को पद्मभूषण तथा 54 को पद्मश्री अलंकरणों से अलंकृत किए जाने की घोषणा की गई है।

विभिन्न विषयों में महारत रखने वाले इन महानुभावों में 4 विशिष्ट व्यक्तित्व के धनी जैन बन्धु भी हैं। हालांकि कुछ और भी इनके अतिरिक्त जैन हो सकते हैं, किन्तु सेठ, फड़के, चौधरी या मित्तल आदि जैसे उपनाम लिखे होने से इनको जैन रूप में जानना/ पहचानना अभी शेष है।

भारत रत्न तथा पद्मविभूषण के उपरान्त देश के सर्वोच्च नागरिक अलंकरण पद्मभूषण से सम्मानित होने वाले हैं - श्री सिद्धराज डड्डा (सार्वजनिक मामले) तथा श्री हस्तिमल संचेती (चिकित्सा)। पद्मश्री सम्मान से सम्मानित होने वाले हैं - श्री नेमीचन्द्र जैन (कला एवं रंग मंच) तथा श्री ओमप्रकाश जैन (कला)।

भारतीय पुलिस सेवा (आई.पी.एस.) के म.प्र. कैंडर के आठ अधिकारियों को विशिष्ट और सराहनीय सेवा के लिए राष्ट्रपति का पुलिस पदक दिए जाने की भी घोषणा की गई है। इनमें डी.आई.जी. पुलिस कल्याण, भोपाल श्री अशोक कुमार जैन भी सम्मिलित हैं।

इन सभी के दीर्घकाल तक मानव सेवा एवं कल्याण की कामना के साथ ही जैन समाज के इन गौरव पुरुषों को आत्मीय बधाइयाँ।

कबीर की साखियाँ

साधु सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गजदन्त ।
ते निकसै नहिं बाहुरै^१, जो जग जाहि अनन्त ॥

जाका गुरु है गीरही^२, गिरही चेला होय ।
कीच कीच के धोवते, दाग ने छूटै कोय ॥

पण्डित केरी पोथियाँ, ज्यों तीतर का ज्ञान ।
औरै सगुन बताव हीं, आपन फंद न जान ॥

१. वापिस आना

२. गृहस्थी में आसक्त

हंसा बगुला एक-सा, मानसरोवर माँहि ।

बगा ढिंढौरै माछरी, हंसा मोती खाँहि ॥

हीरा तहाँ न खोलिए, जहाँ खोटी है हाट ।

कसि करि बाँधो गाँठरी, उठि करि चालो बाट ॥

जब गुन को गाहक मिलै, तब गुन लाख विकाय ।

जब गुन को गाहक नहीं, कौड़ी बदले जाय ॥

जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्ता- शैलेन्द्र समटौरिया

जिज्ञासा- क्या आचार्य समन्तभद्र को तीर्थकर प्रकृति का बंध हुआ तथा वे आगे तीर्थकर बनेंगे या नहीं। सप्रमाण उत्तर दें?

समाधान- आचार्य समन्तभद्र इसी पंचमकाल में हुय है। श्री कर्मकाण्ड में इस प्रकार कहा है-

“तित्थयर बंध पारम्भ्या णरा केवलि दुगंते” ॥93 ॥

अर्थ- तीर्थकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ कर्मभूमि के मनुष्य के द्वारा केवली या श्रुतकेवली के पादमूल में ही होता है। (जबकि आचार्य समन्तभद्र को केवली तथा श्रुतकेवली का पादमूल उपलब्ध नहीं था) टीका में यह भी लिखा है कि केवली वा श्रुतकेवली के पादमूल में ही तीर्थकर प्रकृति के बंध का नियम इसलिये है कि अन्य स्थान पर ऐसी विशुद्धता नहीं होती जो तीर्थकर प्रकृति का बंध प्रारंभ कर सके। इस प्रमाण से तो ऐसा ही मानना चाहिए कि आचार्य समन्तभद्र को इस भव में तीर्थकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ नहीं हुआ। (वर्तमान के जो आचार्य एवं विद्वत्गतण दोनों केवली के पादमूल के बिना भी तीर्थकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ मानते हैं, उनके अनुसार आचार्य समन्तभद्र को इस भव में तीर्थकर प्रकृति के बंध का प्रारंभ कदाचित्त संभव हो सकता है) आचार्य समन्तभद्र भविष्य में कभी तीर्थकर बनेंगे। इसके कुछ उपलब्ध प्रमाण इस प्रकार हैं :-

1. राजा बलिकथे में आचार्य समन्तभद्र को तपस्या द्वारा चारण ऋद्धिधारी बताते हुये उन्हें आगामी तीर्थकर कहा है- समीचीन धर्मशास्त्र प्रस्तावना पृ. संख्या 50-

2. आस मीमांसा की प्रस्तावना क पृ. 5 में भाषाकार पं. मूलचन्द्र शास्त्री, श्री महावीर जी, ने निम्न गाथा लिखी हैं-

अट्ट हरी णव पडिहरि चक्कि-चउक्कं य एय बलभदो ।
सेणिय समंतभद्रासे तित्थयरा हुंति णियेमेण !

अर्थ- आठ नारायण, नौ प्रतिनारायण, चार चक्रवर्ती, एक बलभद्र, श्रेणिक तथा समंतभद्र ये चौबीस महापुरुष आगे तीर्थकर होंगे।

3. वीर विक्रान्त की प्रशस्ति में इस प्रकार कहा है-

श्री मूलसंघ व्योमेन्दुभारते भावितीर्थकृत ।
देशे समन्तभद्राख्यो मुनिर्जीयात्पद्दधिकः ॥

4. जिनेन्द्रकल्याणाभ्युदय नामक ग्रंथ में भी इस प्रकार कहा है-

श्री मूलसंघ व्योमेन्दुभारते भावतीर्थकृत ।
देशे समन्तभद्राख्यो श्रीयात्प्राप्तपद्दधिकः ॥

5. श्री श्रुतसागर सूरि ने षट्पाहुड की टीका में इस प्रकार कहा है-

उक्तं च समन्तभद्रेणोत्सर्पिणिकाले आगामिनि
भविष्यतीर्थकरपरमदेवेन, काले कल्पशतेऽति च

6. ब्रह्मनेमिदत्त कृत आराधना कथाकोश में इस प्रकार कहा है-

कृत्वा श्री मज्जिन्द्राणां शासनस्य प्रभावनाम् ।
स्वमोक्षदायिनीं धीरा भावितीर्थकरो गुणी ॥

(उपरोक्त सभी प्रमाणों के संकलन का श्रेय स्वर्गीय पं. पन्नालाल जी सागर को है)

उपरोक्त सभी प्रमाण आचार्य समन्तभद्र के भावि तीर्थकरत्व का समर्थन करने वाले हैं, तथा चौदहवीं से सोलहवीं शताब्दी के मध्य के हैं। परन्तु तिलोयपण्णत्ति में जहाँ भावी तीर्थकरों का उल्लेख है वहाँ आचार्य समन्तभद्र की कोई चर्चा नहीं है। अतः इस विषय का प्रबल आधार खोजा जाना चाहिये।

जिज्ञासा- भगवान् शान्ति नाथ की पूजन में (हरी द्रोपदी धातकी खण्ड माँही) इसका क्या अर्थ लगाना चाहिये?

समाधान- इन पंक्तियों का तात्पर्य श्री हरिवंश पुराण की निम्न कथा से समझना चाहिये। एक बार नारद पाण्डवों के महल में आये तथा द्रोपदी के घर गये। द्रोपदी आभूषण धारण करने में व्यस्त थी अतः वह नारद के प्रवेश को न जान सकी। इससे नारद जी अत्यन्त रूष्ट हुये और द्रोपदी को दुःख देने का निश्चय करके आकाश मार्ग से पूर्व घातकीखण्ड के भरतक्षेत्र की अमरकंकोपुरी के राजा पद्मनाभ से मिले। नारद ने पद्मनाभ से द्रोपदी के रूप का अतिशय वर्णन कर राजा पद्मनाभ के चित्त में उसके प्रति उत्कंठा उत्पन्न कर दी। और द्रोपदी का पूरा पता बताकर चले गये। पद्मनाभ ने संगम नामक देव की आराधना कर सोती हुयी द्रोपदी को उठवाकर अपनी नगरी में बुला लिया। द्रोपदी ने जगन पर राजा से उसके समक्ष अपना प्रस्ताव रखा। द्रोपदी अत्यन्त दुखी हुयी और उसने अपनी पति अर्जुन के दर्शन होने तक आहार का त्याग कर दिया और पद्मनाभ के हठ को देखकर बोली “यदि मेरे आत्मिय जन एक माह के भीतर यहाँ नहीं आते हैं तो तुम्हारी जो इच्छा हो सो करना” और स्वयं भगवान् के ध्यान, स्तवन् में लग गई। द्रोपदी के अचानक अदृश्य हो जाने पर पाण्डवों में शोक छा गया और उन्होंने श्री कृष्ण को सभी समाचार बताया। एक दिन अचानक नारद जी श्री कृष्ण की सभा में आये और उन्होंने द्रोपदी की पूरी जानकारी दी। श्री कृष्ण तब द्रोपदी को लाने के लिए रथ पर बैठकर अधिष्ठाता देव की आराधना करके उसकी सहायता से लवणसमुद्र का उल्लंघन कर घातकीखण्ड द्वीप पहुँच गये। समाचार मिलते ही राजा पद्मनाभ की सेना, नगरी से आयी लेकिन पाँचों पाण्डवों ने उस मारकर भगा दिया। राजा पद्मनाभ नगर गके द्वार कर भीतर छुप गया था तब श्रीकृष्ण ने अपने पैरों से आघात में उसके महल आदि को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया।

कोई उपाय न देख राजा द्रोपदी की शरण में आया और क्षमा माँगते हुए अभयदान की प्रार्थना की। द्रोपदी ने उग्रमे स्त्री

का भेष धारण कर श्रीकृष्ण की शरण में जाने को कहा। तब राजा पद्मनाभ मंत्री का भेष धारण कर द्रोपदी को आगे करके श्रीकृष्ण की शरण में पहुँचे श्रीकृष्ण ने उसे अभयदान दिया और सभी पाण्डवों के साथ लवण समुद्रा को पार करके द्वारिका वापिस लौट आये। इस प्रकार इस पूजा में, भगवान् के ध्यान/स्तवन का फल बताने को यही कथा दी है।

प्रश्नकर्ता— श्रीमति प्रतिभा जैन, जयपुर

जिज्ञासा— क्या तीर्थकर गृहस्थ अवस्था में अणुव्रत नहीं धारण करते? जबकि भगवान् पार्श्वनाथ की पूजा में लिखा है 'धरे अणुव्रत महासुखकार'।

समाधान— तीर्थकर प्रभु गृहस्थ अवस्था में अणुव्रत धारण नहीं करते। सभी तीर्थकरों के आठ वर्ष की आयु में देशसंयम हो जाने का नियम है, जैसा कि महापुराण पर्व 53 में कहा है—

स्वायुराद्यष्टवर्षेभ्यः सर्वेषां परतो भवेत्।

उदिताष्टकषायाणां तीर्थेशा देशसंयमः ॥35 ॥

अर्थ— जिनके प्रत्याव्याख्यानावरण और संज्वलन सम्बन्धी क्रोध, मान, लोभ इन आठ कषायों का ही केवल उदय रहता है ऐसे सभी तीर्थकरों के अपनी आयु के आठ वर्ष के बाद देशसंयम हो जाता है।

प्रश्नकर्ता— वीरेन्द्र शास्त्री, कोटा

जिज्ञासा— चौथे गुणस्थान में धर्मध्यान होता है या नहीं?

समाधान— शास्त्रों में धर्मध्यान के गुणस्थानों का वर्णन दो प्रकार से प्राप्त होता है।

आचार्य पूज्यपाद ने सर्वार्थसिद्धि अध्याय 9 सूत्र 36-37 की टीका में श्रेणी के पहले धर्म ध्यान माना है। लिखा है कि "धर्मध्यानं चतुर्विकल्पमवसेयम् तदविरत देशविरत प्रमतामत श्रेणी के पहले धर्म ध्यान माना है। लिखा है "धर्मध्यानां चतुर्विकल्पमवसेयम् तदविरत देशविरत प्रमताप्रमत संयतानाम् भवति.... श्रेण्यारोहणात्प्राग्धर्म्यं श्रेण्यो शुक्लेइति व्याख्याते।"

अर्थ— धर्मध्यान चार प्रकार का जानना चाहिये। यह अविरत, देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीव के होता है। श्रेणी आरोहण से पूर्व धर्मध्यान होता है और दोनों श्रेणियों में शुक्लध्यान होता है इसी तरह श्री अकंकल स्वामी ने राजवार्तिक में तथा ज्ञानार्णव में भी लिखा है। श्री धवला पु. 13 में धर्मध्यान की दूसरी व्याख्या मिलती है। जिसके अनुसार धर्मध्यान कषाय रहित जीवों से होता है और शुक्लध्यान कषाय रहित होता है। अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान से दशवें गुणस्थान तक धर्मध्यान माना है और शेष चार गुणस्थानों में शुक्लध्यान माना है। दोनों ही तरह की व्याख्याओं में चतुर्थ गुणस्थान में धर्मध्यान स्वीकार किया गया है।

इस संबंध में कुछ अन्य आचार्यों ने विचार इस प्रकार भी प्राप्त होते हैं।

1. तत्वानुशासन में इस प्रकार कहा है :-

मुख्योपचार भेदेन धर्मध्यानमिह द्विधा।

अप्रमत्तेषु तन्मुख्यामितोष्वोपचारिकं ॥ 47 ॥

अर्थ— मुख्य और उपचार के भेद से धर्म दो प्रकार का कहा गया है। अप्रमत्त नामक संसम गुणस्थान में मुख्य धर्मध्यान है और नीचे के गुणस्थान में औपचारिक धर्मध्यान है।

2. भावसंग्रहकार का कथन इस प्रकार है।

मुख्यं धम्मज्झाणं उच्चं तु पमाय विरहिए ठाणे।

देस विरए पमत्ते उवयारे णेव णायव्वं ॥ 37 ॥

अर्थ— मुख्य धर्मध्यान प्रमत्तामक गुणस्थान में कहा गया है। देशविरत और प्रमत्तविरत गुणस्थान में उपचार से ही जानना चाहिये।

3. ज्ञानार्णवकार आचार्य शुभचन्द्र ने इस प्रकार कहा है।

खपुष्पमथाश्रुंगं खरस्यापि प्रतीयते।

न पुनर्देशकालेऽपि ध्यानसिद्धिर्गृहाश्रमे ॥ 4, 17 ॥

अर्थ— आकाश के पुष्प और गधे के सींग नहीं होते हैं। कदाचित् किसी देश व काल में इनके होने की प्रतीति हो सकती है परन्तु गृहस्थाश्रम में ध्यान की सिद्धि होनी तो किसी देश व काल में सम्भव नहीं है।

4. श्री देवेसन आचार्य ने भावसंग्रह में इस प्रकार कहा है।

किं जं सो गिहवंतो वहिरंतरगंथ परिमिओ णिच्छं।

वहु आरम्भयउत्तो, कह झायह सुद्ध मप्पाणं ॥ 384 ॥

घरवावारा केई करणीया अत्थि ते ण ते सब्बे।

झाणट्टियस्स पुरओ, चिट्ठंति णिमीलियचिच्छस्स ॥ 385 ॥

अर्थ— मुख्य रूप से गृहस्थ के धर्मध्यान न होने का कारण यह है कि गृहस्थों के सदा काल बाह्याभ्यन्तर परिग्रह परिमित रूप से रहते हैं तथा आरंभ भी अनेक प्रकार के बहुत होते हैं इसलिए वह शुद्धात्मका का ज्ञान कैसे कर सकता है अर्थात् नहीं कर सकता ॥ 384 ॥ गृहस्थों को घर के कितने ही व्यापार करने पड़ते हैं जब वह गृहस्थ अपने नेत्रों को बंद कर ध्यान करने बैठता है तब उसके सामने घर के करने योग्य सब व्यापार आ जाते हैं ॥ 385 ॥

उपरोक्त प्रमाणों से यह स्पष्ट होता है कि चतुर्थ व पंचम गुणस्थानवर्ती गृहस्थों के उपचार से धर्म ध्यान मानना चाहिये और वह भी क्वचित् कदाचित् ही मानना उचित है।

प्रश्नकर्ता— अजय जैन, जबलपुर

जिज्ञासा— क्या व्यवहार नय का विषय असत्य और अप्रयोजनीय हैं?

समाधान— उपरोक्त विषय में सबसे पहले हमें इस बात का विचार करना चाहिये, कि क्या कोई नय सत्य या कोई नय असत्य कहा जाये या नहीं।

नय की परिभाषा— 'प्रमाण के द्वारा सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया गया वस्तु का अंश/ धर्म को ग्रहण करने वाला ज्ञान नय कहलाता है।' ज्ञाता के अभिप्राय को नय कहते हैं। जो नाना स्वभावों से हटाकर किसी एक स्वभाव में वस्तु को ले जाता है, वह नय कहलाता है (आ.पा. 186) नय के मूल दो भेद होते हैं।

1. निश्चयनय 2. व्यवहार नय।

निश्चयनय का हेतु द्रव्यार्थिकनय है, और साधन अर्थात् व्यवहार का हेतु पर्यायार्थिकनय है। (आ.पा. 10) ये दोनों ही नय सर्वज्ञ द्वारा प्रणीत हैं। जैसा कि पंचास्तिकाय गाथा-4 की टीका में कहा गया है।

दौ हि नयौ भगवता प्रणीतौ द्रव्यार्थिकः पर्यायार्थिकश्च तत्र न खलु एक नयायताः देशना, किन्तु उभयनयायता ॥

अर्थ- दोनों ही नय भगवान् के द्वारा कहे गये हैं। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। इनमें से भगवान् का उपदेश एक के आश्रित नहीं। किन्तु उभयनयों के आश्रित हैं।

श्री धवला जी में इस प्रकार कहा गया है कि-तीर्थकर के वचनों के सामान्य प्रस्तार का मूल व्याख्यान करने वाला द्रव्यार्थिकनय है और उन्हीं वचनों के विशेष प्रस्तार का मूल व्याख्याता पर्यायार्थिकनय है। 'शेष सभी नय इन दोनों नयों के विकल्प है।

ये दोनों नय अपने-अपने विषय के कथन में समीचीन है। इस बात को बताने के लिए श्री जयधवला (पु. 1/351) में आचार्य वीरसेन स्वामी कहते हैं कि-

णिययणय णिज्जसच्चा सव्वणया पर वियालणे मोहा ।

ते उणेण दिट्ठ समओ, विभयई सच्चे व अलिंवा ॥,

अर्थ- ये सभी नय अपने-अपने विषय के कथन करने में समीचीन है और दूसरे नयों के निराकरण में मूढ़ हैं। अनेकांत रूप समय के ज्ञाता पुरुष "यह नय सच्चा है और यह नय झूठा है" इस प्रकार का विभाग नहीं करते हैं।

श्री जयधवला में (पु. 1/8) पर इस प्रकार कहा है। जब व्यवहारणयं पउच्च पुण गोदमसमिणा चुदवीसणहमणियोदा-राणमादीए मंगलं कदं ण ववहारणणओ चप्पलओ, ततो सिस्साणं पउचित्तदंसणादो । जो बहुजीववाणुगहकारी ववहारणओ सो चेव समस्सिदव्वो त्ति मणेणावहारिय गोदमथेरेण मंगलं तत्थ कयं ।

अर्थ- गौतम गणधर ने व्यवहारणय का आश्रय लेकर कृति आदि चौबीस अनुयोगों द्वारों के आदि "णमो जिण्णणं" इत्यादि रूप से मंगल किया है यदि कहा जाय व्यवहारणय असत्य है, सो भी ठीक नहीं है, क्योंकि उसमें शिष्यों की प्रवृत्ति देखी जाती है। अतः जो व्यवहारणय बहुत जीवों का अनुग्रह करने वाला है उसी का आश्रय करना चाहिये, ऐसा मन में निश्चय करके गौतम स्थविर (गणधर) ने चौबीस अनुयोगद्वारों के आदि में मंगल किया है।

श्री पद्मनंदि आचार्य ने पद्मनंदिपंचविंशतिका में तो व्यवहारणय को पूज्य कहा है।

मुख्योपचार विवृतिं, ववहारोपायतो यतः सन्तः ।

ज्ञात्वाश्रयन्ति शुद्धतत्त्वमिति व्यवहतिः पूज्या ॥ 608 ॥

अर्थ- क्योंकि सज्जन मनुष्य व्यवहारणय के आश्रय से मुख्य और उपचार कथन को जानकर शुद्धतत्त्व का आश्रय लेते हैं अतएव व्यवहारणय पूज्य है।

उपरोक्त प्रमाणों से यह बिल्कुल स्पष्ट होता है कि व्यवहारणय असत्य नहीं है। और श्री, यदि व्यवहारणय को असत्य माना जायेगा तो अरहंत परमेष्ठी का सर्वज्ञ पना भी असत्य सिद्ध हो जायेगा।

जैसा कि आचार्य कुन्दकुन्द महाराज नियमसार में लिखते हैं-
**जाणदि पस्सदि सव्वं, ववहारणयेण केवली भगवन् ।
केवलणाणी जाणदि, पस्सदि णियमेण अप्पाणम् ॥**

अर्थ- केवली भगवान् व्यवहारणय से सर्व लोकालोक को जानते हैं और देखते हैं। तथा निश्चयनय से अपनी आत्मा को ही जानते और देखते हैं।

यहाँ यह बताना भी उचित होगा कि आगम में नयों का वर्णन किसलिये किया जाता है। इसका वर्णन श्री वीरसेन स्वामी ने जयधवला 1/225 में इस प्रकार किया है-

यह नय पदार्थों का जैसा स्वरूप हैं उस रूप से उनके ग्रहण करने में निमित्त होने से मोक्ष के कारण है इसलिए नय का अध्ययन किया जाता है।

जो लोग व्यवहार को झूठा या हेय बताते हैं। उनको समझाने के लिये आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी ने समयसार की टीका में निम्नगाथा कहीं है।

जइजिणमयं पवज्जह तामा ववहारणिच्छये मुणह ।

एक्केण विणा छिज्जई, तित्थं अण्णेण उण तत्त्वं ॥

अर्थ- यदि तुम जैनधर्म का प्रवर्तन चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय इन दोनों को मत छोड़ो क्योंकि एक नय (व्यवहारणय) के बिना तीर्थ अर्थात् व्यवहार मार्ग का नाश हो जायेगा। और दूसरे (निश्चयनय) के बिना तत्त्व (वस्तु) का नाश हो जायेगा। अतः व्यवहारणय को असत्य नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक व्यवहारणय का हमारे लिये प्रयोजनीय अथवा अप्रयोजनीय होने का प्रश्न है, इसके संबंध में समयसार गाथा 12 के भावार्थ में पंडित जयचन्द्र जी का मन्तव्य इस प्रकार है-' जब तक शुद्धभावों की प्राप्ति नहीं होती तब तक जितना अशुद्धनय का कथन है, उतना यथा पदवीं प्रयोजनीय है। तब तक यथार्थ ज्ञान श्रद्धान रूप सम्यक्त्व की प्राप्ति ना हुई हो तब तक तो जिनसे यथार्थ उपदेश मिलता है। ऐसे जिनवचनों को सुनना, धारण करना, जिनवचन के कहने वाले श्री गुरु की भक्ति, जिनबिम्ब के दर्शन इत्यादि व्यवहार मार्ग में प्रवृत्त होना प्रयोजनीय है। और जिसके श्रद्धान ज्ञान हुआ हो, पर साक्षात् प्राप्ति ना हुई तब तक पूर्व कथित कार्य, पर द्रव्यों का आलम्बन छोड़न रूप अणुव्रत और महाव्रत का ग्रहण समिति, गुप्ति पंचपरमेष्ठी का ध्यान रूप प्रवर्तन तथा उसी प्रकार प्रवर्तन करने वालों की संगति करना और विशेष जानने के शास्त्रों का अभ्यास करना इत्यादि व्यवहार मार्ग में आप प्रवर्तन करना, तथा अन्य को प्रवृत्त कराना इत्यादि व्यवहारणय का उपदेश अंगीकार करना प्रयोजनीय है। व्यवहारणय को कथंचित असत्यार्थ कहा गया है। यदि कोई उसे सर्वथा असत्यार्थ जानकर छोड़ दे तो शुभापयोग रूप व्यवहार को छोड़ना है। और चूँकि शुद्धोपयोग की साक्षात् प्राप्ति नहीं हुई इसलिये उल्टा शुभोपयोग में ही आकर भ्रष्ट होगा। और यदि स्वेच्छा रूप प्रवृत्ति करेगा तो नरकादि गति को प्राप्त कर संसार में ही भ्रमण करेगा। इसलिये जो शुद्धनय का विषय शुद्धात्मा है। जब तक उसकी प्राप्ति ना हो, तब तक व्यवहारणय प्रयोजनीय है। ऐसा स्याद्वाद मत में श्री गुरुओं ने उपदेश दिया है।

1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी
आगरा- 282002 (उ.प्र.)

आदिनाथ भगवान की 5 टन की विशाल पद्मासन प्रतिमाजी उच्च स्थान कमल पर विराजित

अजमेर, 31 जनवरी, 03 19वीं शताब्दी की ऐतिहासिक धरोहर अजमेर स्थित सोनीजी की नसियाजी, जिसे सेठ सा. की नसियाजी भी कहा जाता है, में सन् 1953 में स्व. सर सेठ भागचंदजी सोनी ने भगवान आदिनाथ की 5 टन की विशाल पदमासन प्रतिमाजी को मूल वेदी के मध्य स्थान में 18 इंच ऊँचे सिंहासन पर विराजित कराया। इस प्रतिमाजी को दिनांक 9 जनवरी, 03 को नवनिर्मित वेदी के ऊपर 1750 किलोग्राम के कमलदल सिंहासन पर परमपूज्य संत शिरोमणि आचार्य 108 श्री विद्यासागरजी की पावन प्रेरणा एवं आशीर्वाद से मुनि 108 श्री सुधासागरजी महाराज ससंघ के सान्निध्य में पं. रविकान्त जैन के निर्देशन में बड़े हर्ष व उल्लास के वातावरण में भव्य समारोह के बीच विराजित किया गया।

पूर्व में जब-जब विभिन्न आचार्यगण एवं मुनि संघ यहां पधारे, उन्होंने इसमें वास्तुदोष बतलाया, क्योंकि यह मूर्ति दर्शनार्थियों की नाभि के नीचे विराजित थी। प्राचीन मूल वेदी में तोड़-फोड़ से बचने व अन्य विराजित मूर्तियों के दर्शनों में व्यवधान को देखते हुए इस प्रतिमाजी को उच्चासन पर विराजमान करने की योजना पर चर्चाएं तो हुईं, लेकिन इसे क्रियान्वित कर मूर्त रूप नहीं दिया जा सका। गत वर्ष जैन विश्व के सबसे बड़े चौरासी फीट उतंग मानस्तम्भ की जून 2003 में स्वर्ण जयन्ती महोत्सव पर महामस्तकाभिषेक के आयोजन के सन्दर्भ में टेम्पुल ट्रस्ट के ट्रस्टी श्री निर्मलचन्द सोनी व श्री प्रमोदचंद सोनी की नसियाजी की सभी वेदियों के जीर्णोद्धार के साथ-साथ इस प्रतिमाजी को उच्चासन पर विराजमान करने की भावना जाग्रत हुई। इस हेतु ट्रस्टीगणों ने अजमेर जैन समाज के प्रबुद्ध महानुभावों व विद्वानों की एक सभा बुलाकर सारी बातों पर चर्चा की। उन्हें आचार्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज का आशीर्वाद एवं सान्निध्य प्राप्त करने ले गये एवं आचार्यश्री को श्रीफल समर्पित करके सान्निध्य एवं चातुर्मास करने की विनती की। आचार्य श्री चातुर्मास हेतु सिद्धोदय क्षेत्र पधार रहे थे, एतद् उन्होंने सान्निध्य प्रदान करने एवं चातुर्मास हेतु असमर्थता व्यक्त करते हुए इस मंगलमय कार्य के लिए शुभ आशीर्वाद प्रदान करते हुए एवं अपने परम शिष्य मुनि 108 श्री सुधासागरजी महाराज के पास जाने का निर्देश प्रदान किया। आचार्य श्री के पास से लौटते हुए मुनि 108 श्री सुधासागरजी

महाराज ससंघ का चांदखेड़ी अतिशय क्षेत्र में अजमेर चातुर्मास हेतु प्रार्थना तथा इस कार्य को सान्निध्य प्रदान करने हेतु विनती की गई। बिजौलिया पार्श्वनाथ में चातुर्मास के समापन के बाद मुनि श्री 108 सुधासागरजी महाराज अलवर जाते समय अजमेर पधारे तब उनसे पुनः विनती एवं निवेदन किया गया। मुनिश्री ने यहां आकर ट्रस्टीगणों से विचार-विमर्श किया और निर्देश प्रदान किये। अन्ततः 8 जनवरी को उनके सान्निध्य में कमलदल साढ़े तीन फीट ऊँची वेदी पर विधिविधान पूर्वक विराजित किया गया और दिनांक 7 जनवरी को मुनि श्री की आध्यात्मिक शक्ति, आत्मबल एवं आशीर्वाद से इस प्रतिमाजी को कमलदल पर विराजित किया गया। भगवान आदिनाथ एवं आचार्य विद्यासागरजी महाराज तथा मुनि सुधासागरजी महाराज की जय-जयकार से पूरी नसियाजी गूँज उठी, जहां हजारों की तादाद में भक्तगण मुदित भाव से बड़े उत्साहपूर्वक हर कार्य में योगदान दे रहे थे। इसके साथ ही मूल वेदी में विराजित बारह प्रतिमाएँ तथा अन्य वेदियों में विराजित सभी प्रतिमाजी मन्दिर के दायें भाग में विराजित कर दी गई हैं। अब नसियाजी की तीनों वेदियों का जीर्णोद्धार प्रारम्भ हो गया है और आशा है कि महामस्तकाभिषेक के साथ ही विधिविधान पूर्वक इन समस्त प्रतिमाओं का नूतन वेदियों में विरोजित करने का भव्य कार्यक्रम इसी वर्ष जून माह में होने की संभावना है। इस प्रतिमाजी का उच्चासन पर विराजमान होना सामाजिक व आर्थिक उत्थान तथा समाज को जोड़ने में महत्वपूर्ण साबित होगा, ऐसी आशा है।

भव्य समारोह में नूतन वेदी का नक्शा बनाने वाले आर्किटेक्ट सर्वश्री उम्मेदमलजी जैन एवं उनके सुपुत्र श्री निर्मलकुमारजी जैन का तथा कमलदल के निर्माता जयपुर के मूर्तिकार का ट्रस्ट की ओर से शाल ओढ़ा कर सम्मान किया गया। इसके बाद सोनी परिवार के सर्वश्री निर्मलचंदजी सोनी एवं प्रमोदचंदजी सोनी का अजमेर समाज की ओर से श्री ज्ञानोदय तीर्थक्षेत्र के अध्यक्ष श्री भागचंद गदिया द्वारा शाल, माला व साफा ओढ़ा कर भावभीना सम्मान किया गया जिसका तुमूलनाद से उपस्थित साधर्मिगणों द्वारा अनुमोदन किया गया। ट्रस्ट की ओर से सभी धर्मप्रेमियों को मोदक वितरण व बाहर से पधारे हुए अतिथियों के लिए आवास एवं भोजन की सुव्यवस्था रही।

हीराचंद जैन
सह-प्रचार-प्रसार संयोजक

समाचार

श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर

सर्वोदय कॉलोनी, अजमेर

अजमेर। 2 फरवरी, 03 सहज रूप से अपने हार्दिक भावों के साथ किये गये कर्मों को श्रेयस्कर बतलाते हुए प.पू. मुनि 108 श्री क्षमासागर महाराज ने अपने मंगल उद्बोधन में सर्वोदय कॉलोनी स्थित श्री शान्तिनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर परिसर में कहा कि अगर इनके साथ स्व व परकल्याण की भावना निहित हो, तो सोने में सुहागा वाली बात हो जाती है। एक मां अपने बच्चे का लालन-पालन सेवा सुश्रुषा आदि जैसे करती है, वैसे ही सूर्य प्रकाशमान होकर बिना किसी भेदभाव के जगत को प्रकाश व ऊर्जा प्रदान करता है। व्यक्ति द्वारा किए गए कर्मों से दूसरों का कितना हित व अहित होगा, इस पर विचार करते हुए अपने कर्मों पर कमांड रखते हुए निर्मल भावना से अगर इन्हें पूर्ण किया जाये, तो यह कर्म सर्वजनहिताय हो जाते हैं। अधिकतर देखा गया है कि अच्छे कार्यों का श्रेय लेने को तो सब आतुर रहते हैं, लेकिन गलत व बुरे कार्यों के लिए इधर-उधर झांक कर इन्हें दूसरों पर थोपने की चेष्टा की जाती है।

मुनि श्री ने आगे कहा कि विभिन्न श्रेणियों के मनुष्यों की मानसिकता व उनके आस-पास के वातावरण से उनके द्वारा किये गए कर्मों का फल आश्रित रहता है। प्रथम श्रेणी में वे हैं, जो फल की आकांक्षा तो करते हैं, लेकिन कर्म नहीं करते हैं। वे लॉटरी आदि साधनों द्वारा धन कमाने की इच्छा रखते हैं। दूसरे व्यक्ति वे हैं, जो कर्म तो करते हैं, पर फल भगवान पर छोड़ देते हैं। तीसरे यह जानते हुए कर्म करते हैं कि अच्छा या बुरा जैसा भी कर्म वे करेंगे, वैसा ही उन्हें फल प्राप्त होगा। चौथे प्रकार के मनुष्य कर्म करते हैं, पर कभी फल की आशा नहीं करते। पांचवें प्रकार के मनुष्य न कर्म करते हैं और न किसी प्रकार के फल की आशा रखते हैं और उन्हें निठल्ला माना जाता है। महज संसार चलाने, गृहस्थी व अपनी बरकत के लिए रूटिन मानकर जो कर्म किए जाते हैं, उनसे शान्ति व संतोष की प्राप्ति नहीं होती। जिन्होंने मुदित मन से आत्म कल्याण की भावना के साथ कर्मों को पूर्ण किया हो, जो भले ही संसार चलाने हेतु क्यों न हो, लेकिन इन कर्मों को करने वालों को सुख व शान्ति की अनुभूति होती है। भगवान की पूजन व अर्चना क्यों, कब कैसे व किसी प्रकार के विवादों व चक्करों तथा पंथ व्यामोह में पढ़कर इन्हें करने वालों को आत्मसुख व आत्म संतोष की प्राप्ति नहीं होती, लेकिन जहां शुद्ध भावना से आत्म कल्याण व आनंद मानते हुए पूजा-अर्चना की जाती है, उससे पुण्य बंध के साथ सुख व शान्ति प्राप्त होती है। दूसरों के

जीवन की क्षति न हो और हितकारी भाव जहां समाहित हों, ऐसे कर्म करने से जीवन का उत्थान होता है।

मुनि 108 श्री भव्यसागरजी महाराज ने सुन्दर कथानक के माध्यम से कहा कि समता धारण कर क्रोध से बचते हुए दूसरों की सुरक्षा के भाव जहां समाहित हों, वे विपत्तियों के शूल को फूल समझते हैं।

हीराचंद जैन

श्री ओमप्रकाश जी जैन पद्मश्री के अलंकरण से विभूषित

सुप्रसिद्ध समाजसेवी एवं कुन्दकुन्द भारती न्यास के न्यासी धर्मानुरागी श्रीमान् ओमप्रकाश जी जैन को इस वर्ष गणतंत्र दिवस के सुअवसर पर पद्मश्री के अलंकरण से विभूषित किए जाने हेतु चयनित किया गया है। इस आशय की सूचना भारत सरकार के महामहिम राष्ट्रपति जी की ओर से केन्द्र सरकार द्वारा जारी अधिसूचना में दी गई है। यह समाचार जानते ही राजधानी एवं देश की जैन समाज में हर्षोल्लास का वातावरण छा गया एवं श्री जैन को चारों ओर से बधाइयों का तांता लग गया।

ज्ञातव्य है कि धर्मानुरागी श्रीमान् ओमप्रकाश जी जैन विगत पचास वर्षों से भी अधिक समय से परमपूज्य आचार्यश्री विद्यानन्द जी मुनिराज के पावन आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन में जैन समाज एवं भारत-राष्ट्र की सेवा में तन-मन-धन से समर्पित सुप्रतिष्ठित व्यक्तित्व हैं। तथा आपकी गुण-गरिमा, विनम्रता एवं दूरदर्शितापूर्ण कार्यशैली की अपनी एक विशिष्ट पहिचान है। दिल्ली जैन समाज की विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं एवं गणमान्य व्यक्तियों के साथ-साथ श्री कुन्दकुन्द भारती न्यास एवं प्राकृतविद्या-परिवार के समस्त कार्यकर्ताओं एवं सदस्यों की ओर से धर्मानुरागी श्री ओमप्रकाश जी जैन को उनकी इस गरिमापूर्ण उपलब्धि के सुअवसर पर हार्दिक बधाई और अभिनन्दन के साथ-साथ उनके सुदीर्घ, स्वस्थ जीवन एवं उच्चतम लक्ष्यों की प्राप्ति के निमित्त हार्दिक मंगल-कामनाएँ प्रेषित हैं।

राष्ट्रपति भवन में गरिमापूर्वक आयोजित होने वाले भव्य समारोह में श्री जैन को यह अलंकरण महामहिम राष्ट्रपति जी के कर कमलों से यथासमय समर्पित किया जाएगा।

आत्मदीक्षा



लोग हँसते हैं

मैंने
सूरज को बुलाया है
वृक्ष भी आएँगे
चिड़िया भी आएगी,
नदी और सागर
दोनों ने
आने को कहा है,
धरती और आकाश
दोनों के नाम
मैंने चिट्ठी लिख दी है,
कि हमारी

माटी की गुड़िया के
ब्याह में
सभी को आना है।
लोग हँसते हैं,
कहते हैं
यह मेरा बचपना है।
सचमुच, प्रकृतिस्थ
होना
बचपन में
लौटना है।

उड़ती चिड़ियों से
मैंने पूछा-
तुमने नीलगगन में
उड़ना किससे सीखा?
जब बादल बरसे
मैंने पूछा-
तुमने धरती पर आना
किससे सीखा?
बहती नदियों से
मैंने पूछा-
तुमने किससे
बहना सीखा?
सागर के तट पर आकर
मैंने सागर से पूछा-
तुमने गहरे में गहराना
और सतह पर लहराना
मुझे बताओ
किससे सीखा?
सब मुस्काए ऐसे
जैसे कहते हों
हमने सीखा-
अपने से
अपने से
अपने से।

मुनि श्री क्षमासागर जी

श्री जिनेन्द्राय नमः

जिनभाषित के कीर्तिमान द्वितीय वर्ष
के शुभारम्भ पर मंगल कामनाएँ

BENCO

CRANK SHAFT



निर्माता : निर्यातक

बैंको इन्जिनियरिंग कम्पनी

कैलाश रोड, सिकन्दरा, आगरा - 282009

ध्वनि : कार्यालया : 2642042, 2641439, निवास : 215618, 2522643

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : मनलाल बेनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर,

भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कालोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।